दंसण मूलो धम्मो

आत्मधर्म

शाश्वत सुखका मार्गदर्शक आध्यात्मिक मासिक

वीर सं० २४९३ तंत्री जगजीवन बाउचंद दोशी वर्ष २२ अंक नं० ११

ध्येय की सिद्धि

- हे जीव! अपना ध्येय ऊँचे से ऊँचा रखना। ध्येय को जरा भी निर्बल मत बनाना।
- उस ध्येय की उत्तमता, उसकी महानता, उसकी गंभीरता और उसे साधने का भगीरथ प्रयत्न–इनको भी लक्ष में रखना।
- ध्येय जैसा महान है, वैसा ही उसे साधने का पुरुषार्थ भी महान है, उसे ध्यान में रखकर उस प्रयत्न में जो–जो त्रुटियाँ तुझमें हों, उनका संशोधन करना। अल्प प्रयत्न में संतुष्ट मत हो जाना।
- ध्येय को दृष्टि समक्ष रखकर, अपने प्रयत्न को उस ओर ही आगे बढ़ाता जा।
- ध्येय भूलना मत, प्रयत्न को छोड़ना नहीं। ऐसा करने से अवश्य ध्येय की सिद्धि होगी

चारित्र

ज्ञान

दर्शन

श्री दिगंबर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, सोनगढ (सौराष्ट्र)

मार्च १९६७] वार्षिक मूल्य २) (२६३) एक अंक २५ पैसा [फाल्गुन सं० २०२३

विषय-सूची

आध्यात्मिक पद
आचार्यकल्प पं० श्री टोडरमलजी का परिचय
धन्य है उनको.....
पर पदार्थों का ज्ञान करते समय भी धर्मी को सम्यक्त्व धारा चलती रहती है, उस समय भी उपयोग और राग भिन्न रहते हैं
केवलज्ञान का टुकड़ा
अचिंत्य महिमावंत आत्मशक्ति
सम्यग्दृष्टि का सभी ज्ञान सम्यक् है
सर्वज्ञ का संदेश
अध्यात्म संदेश
दया कहाँ है
जैन खगोल और विज्ञान का समन्वय
मोक्षमार्ग दो नहीं हैं और न हो सकते हैं
समाचार संग्रह

प्रेस में छप रहे हैं

१. चिद्विलास

२. वस्तुविज्ञानसार

३. अध्यात्म संदेश

(श्री टोडरमलजी कृत रहस्यपूर्ण चिट्ठी तथा उन पर प्रवचन)

४. नियमसारजी शास्त्र की मूल गाथा के पद्यानुवाद

५. 'अपूर्व अवसर' नामक महाकाव्य श्री राजचंद्रजी कृत है, उस पर स्वामीजी का उत्तम प्रवचन तथा सामायिक पाठ व कुन्दकुन्दाचार्य कृत बारह भावना। श्री गुमानीरामजी (स्व० टोडरमलजी के सुपुत्र) कृत समाधिमरण स्वरूप पंडित जयचंद्रजी बारह भावना आदि का संग्रह-ग्रंथ छप रहा है।

६. अष्टपाहुड पंडित जयचंद्रजी की टीका आधुनिक हिन्दी में छपने की तैयारी कर रहे हैं।

आत्मधर्म

आजीवन सभ्य योजना

आत्मधर्म मासिक पत्र के हजारों की संख्या में ग्राहक हैं। पत्र ज्यादा से ज्यादा विकसित बने और उनके स्थायी ग्राहकों को हरसाल वार्षिक शुल्क भेजने का कष्ट न हो, संस्था को भी व्यवस्था में सुविधा रहे। अत: ऐसा निर्णय किया गया है कि- १०१) रुपये लेकर 'आजीवन सभ्य' योजना चालू की जाये, एवं उन्हें 'आत्मधर्म' हरसाल बिना वार्षिक शुल्क भेजा जाये। अत: जो सज्जन इस योजना से लाभ उठाना चाहें, वे निम्न पते पर १०१) रुपया भेजकर इस योजना में सहयोग प्रदान करें। यह योजना गुजराती तथा हिन्दी दोनों भाषाओं के 'आत्मधर्म' के लिये चालू की गई है।

पत्र व्यवहार का पता—
मैनेजर दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

शाश्वत् सुख का मार्गदर्शक मासिक-पत्र

आत्मधर्म

: संपादक : जगजीवन बाउचंद दोशी (सावरकुंडला)

मार्च : १९६७ ☆ वर्ष २२वाँ, फाल्गुन, वीर नि०सं० २४९३ ☆ अंक : ११

आध्यात्मिक पद

[रचियता – कविवर श्री बुधजनजी]

ॐ

हमकौं कछू भय ना रे, जान लियौ संसार॥ हमकौं०॥

जो निगोद मैं सो ही मुझमैं, सो ही मोक्ष मँझार।
निश्चयभेद कछू भी नाहीं, भेद गिनै संसार॥ हमकौं० १॥

परवश ह्वै आपा विसारिकै, राग दोष कौं धार।
जीवत मरत अनादिकाल तैं, यौं ही है उर झार॥ हमकौं० २॥

जाकरि जैसैं जाहि समय मैं, जो होवत जा द्वार।
सो बनि है टरि है कछु नाहीं, करि लीनौं निरधार॥ हमकौं० ३॥

अगनि जरावै पानी बौवै बिहुरत मिलत अपार।
सो पुद्गल रूपी मैं 'बुधजन' सबको जाननहार॥ हमकौं० ४॥

आचार्य-कल्प पंडित श्री टोडरमलजी का

परिचय

(डा० कस्तूरचंद काशलीवाल, एम०ए०, पी० एचडी., शास्त्री, जयपुर)

महापंडित टोडरमलजी १८वीं शताब्दी के प्रसिद्ध विद्वान, समाज सुधारक एवं प्रमुख साहित्यसेवी थे। वे अपने समय के सर्वाधिक प्रतिभा-संपन्न एवं लोकप्रिय विद्वान थे। उन्होंने अपने अद्‌भुत सिद्धांत ज्ञान एवं साहित्य निर्माण के द्वारा राजस्थान एवं भारत के अन्य प्रदेशों में जो अहिंसक क्रांति उत्पन्न की थी, उसके प्रभाव से सारा जैन समाज आज भी पूर्ण रूप से प्रभावित है। राजस्थान के गुलाबी जयपुर नगर को उनके जन्मस्थान होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उनके जन्म के समय यद्यपि आमेर से राजधानी जयपुर नगर में स्थानांतरित हो चुकी थी लेकिन नगर-निर्माण एवं विभिन्न वर्गों के लोगों को बसाने का कार्य बड़े वेग से चल रहा था। इसलिए नगर-निर्माण की प्रथम बेला में स्वयं टोडरमलजी ने शिल्पी के रूप में जन्म लिया और अपने लघु जीवन में साहित्य एव समाज सुधार के महान महल का निर्माण करके सारे देश का पथ-प्रदर्शन किया। अल्प समय में ही उन्होंने अमूल्य साहित्य निर्माण का जो महान् कार्य किया वह अद्‌भुत एवं शीघ्रता से विश्वसनीय नहीं है तथा जिसे देखकर निर्माता के प्रति स्वयमेव श्रद्धा से मस्तक झुक जाता है।

पंडित टोडरमलजी का जन्म संवत् १७९७ के लगभग जयपुर के खण्डेलवाल जैन परिवार में हुआ। जोगीदास पंडितजी के पिता थे और माता का नाम रम्भाबाई था। टोडरमलजी अपने माता-पिता के इकलौते पुत्र थे, इसलिये इनके जन्म से माता-पिता को आनंद का ठिकाना नहीं रहा। बड़े लाड़-प्यार से इनका लालन-पालन किया गया और इनकी बाल सुलभ सभी इच्छाओं को पूरा किया गया। बचपन में ही इनकी व्युत्पन्नमति को देखकर माता-पिता ने इन्हें खूब पढ़ा-लिखाकर योग्यतम पुत्र बनाने का निश्चय किया। ५-६ वर्ष की अवस्था में इन्हें पढ़ाने बैठा दिया गया। वाराणसी से एक विशेष विद्वान इनको पढ़ाने के लिये बुलाया गया लेकिन 'गुरु गुड़ रह गया और चेला शक्कर हो गया' वाली कहावत के अनुसार पंडित टोडरमलजी को ११-१२ वर्ष में ही व्याकरण, न्याय एवं गणित जैसे कठिन विषयों में गंभीर

ज्ञान प्राप्त हो गया। इनकी स्मरणशक्ति विलक्षण थी। सरस्वती की कृपा थी, इसलिए जितना इनके गुरु इन्हें पढ़ाते उससे अधिक ये याद करके उन्हें सुना देते। इनके शिक्षक, पंडितजी की प्रतिभा एवं व्युत्पन्नमति को देखकर दंग रह जाते और इनकी सूक्ष्म बुद्धि की भूरि-भूरि प्रशंसा करते। माता-पिता अपने पुत्र की प्रशंसा सुनकर फूले नहीं समाते और उसकी दीर्घायु एवं यशस्वी जीवन की कामना करते रहते।

अध्ययन समाप्त करने के पश्चात् इन्हें कुछ समय के लिये शेखावटी प्रदेश के 'सिंघाणा' में द्रव्योपार्जन के लिये जाना पड़ा। यहाँ भी इनका अध्ययन यथावत् चलता रहा। इस समय तक पंडितजी की विद्वत्ता एवं विलक्षण प्रतिभा की प्रशंसा जयपुर एवं उसके आस-पास के क्षेत्रों में फैल चुकी थी, इसलिये भाई रायमलजी को इनके सैद्धांतिक ग्रंथों की साक्षात्कार जानकारी प्राप्त करने के लिये सिंघाणा जाना पड़ा। पंडितजी से साक्षात्कार करने पर रायमलजी इनकी विद्वत्ता पर मुग्ध हो गये और गोम्मटसार आदि सैद्धांतिक ग्रंथों का भाषानुवाद करने का आग्रह किया, जिससे जन साधारण को उनके स्वाध्याय का लाभ मिल सके और समाज एवं देश में ज्ञान का प्रचार एवं प्रसार हो सके। पंडितजी यद्यपि संस्कृत, प्राकृत एवं अपभ्रंश भाषा के प्रकांड विद्वान थे, तथा इन भाषाओं में धाराप्रवाह लिख पढ़ सकते थे लेकिन उन्होंने राजस्थानी भाषा को ही अपने साहित्य की भाषा बनाई और संभवत: वे प्रथम विद्वान हैं जिन्होंने ढूँढ़ारी गद्य में इतना अधिक साहित्य लिखा हो।

अपने सिंघाणा प्रवास में इन्होंने साहित्य-निर्माण की ओर प्रथम कदम रखा और वहाँ तीन-चार वर्षों में ही आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धांत चक्रवर्ति द्वारा रचित प्राकृत भाषा के महान ग्रंथराज गोम्मटसार, लब्धिसार एवं क्षपणासार जैसे उच्चस्तरीय ग्रंथों का भाषानुवाद समाप्त कर लिया। कार्य करते हुए साहित्य-निर्माण का इतना अधिक कार्य पंडितजी की अद्‌भुत लग्न एवं निष्ठा का द्योतक है। इन ग्रंथों में सिद्धांत विषय के अतिरिक्त गणित का जो गंभीर प्रतिपादन मिलता है, उसको समझना एवं सीधी-सादी भाषा में उसको समझाना कितना दुष्कर कार्य है, इसको वही जान सकता है जिसने कभी इन ग्रंथों की अध्ययन अथवा स्वाध्याय की हो। सिंघाणा से फिर ये जयपुर आ गये और उसको ही अपनी साहित्यिक एवं सांस्कृतिक गतिविधियों का केन्द्र बना लिया। पंडितजी के यहाँ रहने से नगर में एक अद्‌भुत साहित्यिक चेतना जागृत हो गई और उनके ग्रंथों का स्थान-स्थान पर स्वाध्याय होने लगा। उन्होंने स्वयं

प्रतिदिन शास्त्र स्वाध्याय प्रारंभ की जिसमें स्थानीय नागरिक तथा बाहर के स्वाध्याय प्रेमी भाग लेने लगे। कुछ ही वर्षों में पंडित टोडरमलजी की कीर्ति जयपुर एवं राजस्थान की चहारदीवारी से निकलकर सारे भारत में फैल गई। पंडितजी भी साहित्य सेवा में इतने तल्लीन हो गये थे कि अपना सारा समय इसी पवित्र कार्य में व्यतीत करने लगे। उनकी प्रेरणा से जयपुर, कामा, आगरा, मुलतान एवं अन्य नगरों एवं गाँवों में स्वाध्याय मंडल खुल गये और उनमें सैद्धांतिक ग्रंथों की स्वाध्याय होने लगी। गोम्मटसार के भाषानुवाद के पश्चात् उन्होंने आत्मानुशासन, पुरुषार्थसिद्ध्युपाय जैसे ग्रंथों की भाषा समाप्त की तथा 'मोक्षमार्गप्रकाशक' नामक स्वतंत्र ग्रंथ की रचना कर डाली। 'मोक्षमार्गप्रकाशक' राजस्थानी गद्य की एक महान कृति है, जिसमें सैद्धांतिक चर्चाओं का बड़ा ही सूक्ष्म एवं सफल विवेचन किया गया है। पंडितजी के अद्‌भुत पांडित्य की इसमें अच्छी झलक मिलती है।

गार्हस्थ्य जीवन:

पंडितजी का गार्हस्थ्य जीवन कैसा रहा, इस संबंध में हमें कोई जानकारी नहीं मिलती। लेकिन १७ वें वर्ष में इनका विवाह हुआ। इनकी स्त्री का क्या नाम था और वह कैसे स्वभाव की थी, यह अभी खोज का विषय है लेकिन इनके दो पुत्र उत्पन्न हुये जिनमें बड़े का नाम हरिश्चंद्र और छोटे का नाम गुमानीराम था। गुमानीराम स्वयं विद्वान थे और पंडितजी के समान ही शिथिलाचार के कट्टर विरोधी थे। इन्होंने अपने नाम पर गुमानपंथ की नींव डाली जिसे शुद्धाम्नाय भी कहा जाता है। जयपुर में इस पंथ की काफी प्रसिद्धि रही और बहुत समय तक इस पंथ के अनुयायियों ने समाज की एक नवचेतना प्रदान की। पंडितजी के माता-पिता का देहांत कब हुआ, इसकी भी इनकी रचनाओं में कोई सूचना नहीं मिलती लेकिन इतना अवश्य है कि जब तक पंडितजी सिंघाणा रहे, तब तक इनके माता-पिता अवश्य जीवित थे। इनके पिता जोगीदास का संभवत: इनके विवाह के पहिले देहांत हो गया था।

जीवन घटनाएँ :

पंडित टोडरमलजी के जीवन की कितनी ही घटनाओं का वर्णन सुनने को मिलती हैं जो इनकी साहित्य निष्ठा एवं विद्वत्ता की ओर संकेत करता है। कहा जाता है कि जब वे गोम्मटसार के भाषानुवाद में लगे हुये थे, तब अपने कार्य में इतने तल्लीन एवं एकनिष्ठ हो गये थे कि इन्हें खाने-पीने की भी सुध नहीं रहती थी। जो भी एवं जैसा भी भोजन इन्हें मिलता, उसे

वे खा लेते और फिर अपने कार्य में लग जाते। एक बार इनकी माता ने अपने पुत्र की साहित्य-निष्ठा की परीक्षा लेने के लिये शाक में नमक डालना बन्द कर दिया और छह मास तक इसी तरह बिना नमक के शांक बनता रहा और वे खाते रहे। जब इनका यह ग्रंथ पूरा हुआ, तब उन्हें शाक में नमक न होने की शिकायत हुई।

इसी तरह एक अन्य मनोरंजक घटना इनके पांडित्य का प्रदर्शन करती है। एक बार पंडितजी के गुरु बंशीधरजी शास्त्र प्रवचन कर रहे थे। एक दिन वहाँ एक पंडित आया और शास्त्रवक्ता की परीक्षा लेनी चाही। प्रवचन समाप्त होने के पश्चात् जब आगंतुक विद्वान ने वक्ता का नाम पूछा और बंशीधर नाम बतलाने पर परीक्षक विद्वान ने बंशी न होने पर भी बंशीधर नाम के लिये अनौचित्य बतला दिया। इस पर पंडित टोडरमलजी ने अपने गुरु की आज्ञा लेकर बंशीधर शब्द के सत्रह अर्थ कर डाले और जिन्हें सुनकर आगंतुक विद्वान चुपचाप सभा से उठकर चलता बना।

सुधारक के रूप में :

पंडित टोडरमलजी प्रकांड विद्वान के साथ ही प्रमुख सुधारक भी थे। वे विशुद्ध मार्ग के अनुयायी थे। पाखंडवाद एवं शिथिलाचार का उन्होंने सदैव डटकर विरोध किया और अपने साहित्य एवं प्रवचनों के माध्यम से समाज में नव चेतना जागृत की। उनके समय में साधुओं में एवं गृहस्थों में आचार निष्ठा में जो एक गहरी कमी आ गयी थी, उसे उन्होंने कभी प्रोत्साहन नहीं दिया। यही कारण है कि दिगम्बर जैन समाज में तेरहपंथ का जितना अधिक प्रचार पंडितजी के व्यक्तित्व एवं प्रवचनों के सहारे हो सका, उतना इसके पहिले कभी नहीं हुआ। पंडितजी का व्यक्तित्व इतना अधिक जबरदस्त था कि इनके सामने किसी की भी नहीं चलती थी। विरोधों की वे जरा भी परवाह नहीं करते और अपने मिशन में आगे बढ़ते रहते। वे बहुत कम वर्ष जीवित रहे और युवावस्था के प्रथम पहर में ही उन्हें इस जगत से जाना पड़ा। यदि वे २५-३० वर्ष और जीवित रह जाते तो समाज एवं देश को कितना अधिक विकसित कर सकते इसके बारे में कोई नहीं कह सकता। लेकिन उन्होंने सच्चे अर्थ में अपने जीवन का उपयोग किया और सबसे कम लेकर अधिक से अधिक देश एवं समाज को उसका कर्ज चुकाया।

पांडित्य का प्रभाव :

पंडितजी ने नगर में जिस साहित्यिक एवं सांस्कृतिक चेतना को जन्म दिया, उसके

कारण यहाँ कितने ही विद्वान हुये, जिन्होंने टोडरमलजी के पश्चात् जैन साहित्य की महत्वपूर्ण सेवाएँ कीं। इन विद्वानों में गुमानीराम, पंडित जयचंद छाबड़ा, ऋषभदास निगोत्या, नंदलाल छाबड़ा, स्वरूपचंद विलाला, सदासुख काशलीवाल, मन्नालाल खिंदूका, पारसदास निगोत्या एवं बाबा दुलीचंद के नाम विशेषत: उल्लेखनीय हैं। इन विद्वानों ने पचासों ग्रंथों की राजस्थानी भाषा में और विशेषत: ढूँढारी भाषा में रचना करके साहित्य निर्माण का प्रशंसनीय कार्य किया और जयपुर नगर को सारे भारत का साहित्यिक पथ-प्रदर्शक बना दिया। लेकिन अभी इन विद्वानों का अधिकांश साहित्य अप्रकाशित है, जिसका प्रकाश में आना आवश्यक है। ये ग्रंथ राजस्थानी भाषा की महत्त्वपूर्ण कृतियाँ हैं। उन पर विभिन्न विद्वानों द्वारा खोज होना आवश्यक है। राजस्थान विश्वविद्यालय की हिन्दी विभाग के प्राध्यापकों एवं रिसर्च स्कालरों से आशा की जाती है कि वे इस साहित्य पर शोध कार्य प्रस्तुत करके उसे विद्वानों के सामने रखने में सहायक सिद्ध होंगे।

व्यक्तित्व :

महापंडित टोडरमलजी का तेजोमय व्यक्तित्व था। उनकी भाषण शैली सुमधुर एवं आकर्षक थी। उनकी वाणी से अमृत बरसता था लेकिन वे स्पष्टवादी थे। और पंडित चैनसुखदासजी के शब्दों में वे आचार्य समंतभद्र के समान परीक्षाप्रधानी थे। लकीर के फकीर होना उन्हें जरा भी पसंद न था। तर्क और श्रद्धा का उनमें अपूर्व संगम था, इसीलिये वे श्रद्धा की तरह कोमल एवं तर्क के समान कठोर थे। उनके प्रबल पांडित्य के सामने कोई भी विद्वान उनसे शास्त्रार्थ करने का साहस नहीं कर सकता था। वे कलम एवं वाणी दोनों के धनी थे। साहित्य के माध्यम से समाज एवं देश सेवा की उनमें एक गहरी टीस थी। उन्होंने समाज में जिस साहित्यिक एवं धार्मिक जागृति का बीजारोपण किया, वह उनके जीवन काल में वृक्ष के रूप में लहराने लगा और उनकी मृत्यु के पश्चात् वट वृक्ष के रूप में फैलकर सारे समाज को अपनी शीतल छाया प्रदान की। वास्तव में गत २०० वर्षों में महापंडित टोडरमलजी एवं उनकी कृतियों को जितनी लोकप्रियता मिली है, वैसी संभवत: उनके बाद किसी भी विद्वान को नहीं मिली। जयपुर नगर निवासियों को ऐसी महान विभूति पर गर्व होना स्वाभाविक है।

निर्ग्रंथ वीतरागमार्ग के परम श्रद्धावान, सातिशय बुद्धि के धारक, स्वमत-परमत के ज्ञाता, देश की विभूति ऐसे महाविद्वान एवं लोकोपकारक साहित्यसेवी की स्मृति में जयपुर

नगर में कोई उपयुक्त भवन बने, ऐसी भावना, शुद्धात्म प्रभु का आदर जिनके अंतर में निरंतर रहता है, अगाध ज्ञायकस्वभावी भगवान आत्मा में जो सदा परायण रहे हैं, ऐसे सौराष्ट्र के संत पूज्य श्री कानजीस्वामी की थी। स्वामीजी ने ज्ञानज्योति के धारक पंडित प्रवर आचार्यकल्प श्री टोडरमलजी के गुणानुवाद अनेक बार अपने प्रवचनों में गाये हैं और उनका स्मारक भवन हो, ऐसी अभिलाषा व्यक्त की है। राजस्थान के प्रख्यात विद्वान् पंडित चैनसुखदासजी ने कितनी ही बार अपने प्रवचनों में श्री टोडरमलजी स्मारक भवन की योजना समाज के सामने रखी, और आज यह लिखते हुए अत्यधिक प्रसन्नता हो रही है कि पूज्य स्वामीजी तथा पंडितजी की हार्दिक इच्छा पूर्ण हो रही है। उन महा विद्वान के स्मारक भवन का शिलान्यास सोनगढ़ के वीतराग मार्ग प्रदर्शक, शुद्धात्मसेवी पूज्य श्री कानजीस्वामीजी के प्रमुख शिष्य अध्यात्म-प्रवक्ता पंडित खेमचंदजी जेठालालजी भाई के कर कमलों द्वारा हुआ था, अब यहाँ महान भवन तैयार हो चुका है। अत: तारीख १३वीं मार्च सोमवार, फाल्गुन सुदी २ के शुभ दिन उसका मंगलमय उद्घाटन पूज्य कानजीस्वामी के करकमलों द्वारा होनेवाला है, अत: यह दिन जयपुर जैन समाज के इतिहास में गौरवपूर्ण माना जावेगा।

टोडरमल स्मारक भवन के उद्घाटन के अवसर पर पूज्य परमोपकारी कानजीस्वामी का आभार किन शब्दों में प्रगट करें। वास्तव में इस कार्य को मूर्तदान देने में उनकी प्रेरणा ही प्रमुख सहायक रही है। पूज्य गुरुदेव इस शताब्दी के उत्कृष्ट आध्यात्मिक संत हैं, जिन्होंने अपने अपूर्व ज्ञान एवं प्रवचनों द्वारा सारे गुजरात एवं भारतवर्ष में आध्यात्मिकता का सर्वाधिक प्रचार किया है। वे त्याग एवं साधना की देदीप्यमान प्रतिभा होने के साथ साथ विद्वत्ता के अगाध भंडार हैं। भगवान महावीर के उपदेशों को जगत में प्रचार करना ही उनका जीवन का प्रमुख तथ्य है। आचार्य कुन्दकुन्द के समयसार से उन्होंने आत्मबोध प्राप्त किया है। महापंडित टोडरमलजी के सत्साहित्य के सच्चे अर्थों में वे प्रचारक हैं।

इस स्मारक भवनरूपी यज्ञ के होता हैं नगर के प्रमुख श्रावक एवं धर्मनिष्ठ सेठ पूर्णचंदजी गोदीका जिन्होंने पंडितजी साहब की तथा पूज्य गुरुदेव की प्रेरणा पाकर स्मारक भवन की योजना को मूर्तरूप दिया है। आशा है कि सेठ साहब एवं उनका परिवार भविष्य में साहित्य एवं संस्कृति की रक्षा, संरक्षण एवं उसके प्रचार में इसी प्रकार योग देता रहेगा। जयपुर समाज ही नहीं बल्कि सारा समाज उनके इस कार्य के लिये सदा कृतज्ञ रहेगा।

धन्य है उनको

२०० वर्ष पूर्व पंडित श्री टोडरमलजी लिखते हैं कि—इस वर्तमान काल में अध्यात्मरस के रसिक (रुचिवान) जीव बहुत अल्प हैं; धन्य हैं उनको... जो स्वानुभव की चर्चा किया करते हैं।

वाह, देखो! इस स्वानुभव के रस की महिमा! जगत में स्वानुभव के रसिक जीव हमेशा (प्रत्येक काल में) विरले ही होते हैं। जिनको विकार का रस छूटकर अध्यात्म का रस प्रगट हुआ, वे जीव भाग्यशाली हैं। 'सिद्धसमान सदा पद मेरो' ऐसी अंतर्दृष्टि और ऐसे स्वानुभव की भावना करनेवाले जीव वास्तव में धन्यवाद के पात्र हैं।

अध्यात्म रस की प्रीति अर्थात् चैतन्यस्वभाव की प्रतीति, उसकी महिमा और उसका फल का वर्णन करते समय वनवासी दिगम्बर संत श्री पद्मनंदिस्वामी कहते हैं कि इस चैतन्यस्वरूप आत्मा के प्रति प्रेमपूर्वक-उत्साह से उसकी बात भी जिसने सुनी हो, वह भव्य जीव निश्चय ही भाविकाल में निर्वाण (मोक्ष) का पात्र (वारिस) बन जाता है, अर्थात् वह अल्पकाल में अवश्य मोक्ष प्राप्त करता है। चैतन्य के साक्षात् अनुभव की तो बात ही क्या? परंतु अंतर में उसके प्रति जिसका प्रेम जगा अर्थात् रागादि का प्रेम टूटा, वह जीव भी अवश्य मोक्ष प्राप्त करता है।

शास्त्रकार ने एक खास शर्त रखी है कि 'चैतन्य के प्रेम सहित' उसकी बात सुनो परंतु जिसके अंदर गहरा-गहरा भी राग का प्रेम हो; 'राग से लाभ होगा' ऐसी बुद्धि हो, तो उसको चैतन्य का वास्तविक प्रेम है ही नहीं, परंतु राग का प्रेम है, उसको चैतन्यस्वभाव के प्रति अंदर गहराई में से वास्तविक (सच्चा) उल्लास प्रगट नहीं हो सकता। वहाँ पर तो सुलटने की बात है।

राग का प्रेम और शरीर का, कुटुम्ब का प्रेम तो जीव अनादि से ही करता आया है, परंतु अब उक्त प्रेम को तोड़कर चैतन्य का प्रेम जिसने जागृत किया, वीतरागी स्वभाव के रस का रंग जिसने लगाया, वह जीव धन्य है.. वह निकट मोक्षगामी है।

चैतन्य की बात सुनते ही अंदर से रोमांच प्रगट होता है... असंख्य प्रदेश चमक उठते हैं

कि वाह ! मेरे आत्मा की यह कोई अपूर्व नवीन बात सुनने को मिली... कभी नहीं सुना, ऐसा सुनने को मिला, ऐसा चैतन्य तत्त्व आज मेरे सुनने में आया; पुण्य और पाप से पृथक् ही यह अजीब बात है—इसप्रकार अन्तर स्वभाव का उत्साह लाकर और बहिर्भाव का उत्साह छोड़कर एकबार जिसने स्वभाव का श्रवण किया... उसका बेड़ा पर !

श्रवण (सुनना) तो निमित्त है, परंतु उसके भाव में अंतर हो गया, स्वभाव और परभाव के बीच थोड़ी दरार हो गई—वह अब दोनों को पृथक् अनुभव करके ही रहेगा।

'मैं ज्ञायक चिदानंदघन हूँ, एक समय में परिपूर्ण शक्ति से भरा हुआ ज्ञान और आनंद का समुद्र हूँ'—ऐसी अध्यात्म की बात सुनानेवाले संत-गुरु महाभाग्य से मिलते हैं, और ऐसी बात सुनने को मिली, उस समय प्रसन्नचित्त से, अर्थात् इसके सिवाय दूसरे सभी से प्रीति एक बार छोड़कर, और इसकी ही प्रीति करके 'मेरे तो यही समझना है—इसका ही अनुभव करना है' ऐसी अंदर से गहरी इच्छा प्रगट करके, उपयोग को थोड़ा सा इस तरफ रोककर, जिस जीव ने सुना, वह जीव अवश्य अपनी प्रीति में वृद्धि करता हुआ स्वानुभव करेगा, और मुक्ति को प्राप्त होगा।

जैसे-तैसे सुन ले, उसकी बात यहाँ नहीं, परंतु अंदर में चैतन्य का उल्लास लाकर के सुनता है, उसकी यहाँ बात है। क्या सुनता है ? कि चैतन्यस्वरूप आत्मा की बात सुनता है। किसप्रकार सुनता है ? कि उल्लास से सुनता है; राग के उल्लास से नहीं, परंतु चैतन्य के उल्लास से सुनता है। आत्मस्वरूप की बात सुनते-सुनते प्रमोद आता है—अर्थात् उसके श्रवण के द्वारा शुद्धात्मा को लक्ष्य बनाया, यह अपूर्व है।

अहो ! एक बार भी अन्तर्लक्ष्य करके चैतन्य के उल्लास से इसकी बात जिसने सुनी, उसके भव बंधन टूटने लगे। स्वभाव में उल्लास आया, तो उस तरफ वीर्य झुककर उसका अनुभव करेगा ही।

अहा मैं चैतन्यस्वरूप... वीतरागी संतों की वाणी मेरे चैतन्यस्वरूप का ही प्रकाश करती है—इसप्रकार अंतर में चैतन्य की झंकार सुनकर, उत्साह लाकर... वीर्योल्लास से जिसने सुना, वह अल्पकाल में स्वभाव के उल्लास के बल द्वारा मोक्ष को प्राप्त करेगा, साध लेगा।

श्रवण के वाच्यभूत चैतन्य का एकत्व स्वरूप के प्रति प्रसन्नता और उल्लास लाकर और जगत का उल्लास छोड़कर, परभाव का प्रेम छोड़कर, उसका जिसने श्रवण किया, वह जीव अवश्य स्वानुभव करके मुक्ति को प्राप्त करेगा। चैतन्य की कोई अचिंत्य-अपार महिमा है, उस

महिमा को जिसने लक्ष्यगत (ध्यान में लिया) किया, उसने अपने आत्मा में मोक्ष का बीज रोपा।

अहा, अकेली चैतन्य वस्तु ! जिसके मूलस्वरूप में राग का भी प्रवेश नहीं है, 'पर' से तो निरपेक्ष और परभावों से भी निरपेक्ष – इसके प्रति अंतर में उल्लास लाकर ज्ञानी के श्रीमुख से उसकी बात जिसने सुनी, उसका परिणमन चक्र मोक्ष की ओर हो गया। इससे कहा है कि:—

धन्य है उनको.... कि जो अध्यात्मरस के रसिक होकर ऐसे स्वानुभव की चर्चा किया करते हैं।

(पंडित टोडरमल तथा पंडित श्री बनारसीदासजी द्वारा लिखी हुई तीन चिट्ठियों के ऊपर पूज्य श्री कानजीस्वामी के प्रवचन 'अध्यात्म संदेश' नाम की पुस्तक में से)

पर पदार्थों का ज्ञान करते समय भी धर्मी को सम्यक्त्वधारा चलती रहती है, उस समय भी उपयोग और राग भिन्न रहते हैं।

सम्यग्दृष्टि के परिणाम सविकल्प और निर्विकल्प दो प्रकार से रहते हैं। वहाँ वे विषय-कषायादिरूप या पूजा-दान-शास्त्राभ्यासादिरूप प्रवर्तन करते हैं, यह सविकल्परूप जानना।

सबसे प्रथम आत्मानुभवसहित सम्यग्दर्शन प्रगट हो, तब तो निर्विकल्पदशा ही होती है, ज्ञान का उपयोग अंदर स्थिर हो गया है, परंतु ऐसी निर्विकल्पदशा अधिक समय तक स्थिर नहीं रहती, अर्थात् पीछे सविकल्पदशा आती है। इसप्रकार से सम्यग्दृष्टि के परिणाम निर्विकल्प और सविकल्प दोनों प्रकार होकर चलते हैं। चौथे गुणस्थान में निर्विकल्प अनुभव

नहीं होता, ऐसी बात नहीं; उसीप्रकार सम्यग्दर्शन होने के बाद विकल्प और राग होते ही नहीं, ऐसी बात भी नहीं है। सम्यग्दृष्टि गृहस्थ को भी किसी-किसी समय निर्विकल्प अनुभव होता है, वैसे चौथे-पाँचवें गुणस्थान में उसको भूमिकानुसार विषय-कषायादि के अशुभ और पूजा-दान-शास्त्र-स्वाध्याय-धर्मात्मा की सेवा-साधर्मी का प्रेम-तीर्थयात्रा आदि शुभ परिणाम भी आते हैं। इसके अशुभ परिणाम अधिक मंद हो गये हैं, विषय कषायों का प्रेम अंदर से हट गया है, अशुभ के समय भी नरकादि तुच्छ गति का आयुष्य बंध तो होता ही नहीं। देव-गुरु-धर्म के प्रति उत्साह-भक्ति, शास्त्र के प्रति भक्ति, उसका अभ्यास उसको विशेषता से होता है, परंतु उसका अंतर तो इन शुभकार्यों से भी उदास है। इसके अंतर में तो एक शुद्ध आत्मा ही निवास कर रहा है।

ज्ञान के साथ विकल्प रहते हैं अर्थात् उसका ऐसा मतलब समझना कि ज्ञान सविकल्परूप होकर काम कर रहा है; परंतु वास्तव में ज्ञान स्वयं विकल्परूप बनता नहीं। ज्ञान तो ज्ञानरूप से ही काम करता है; विकल्प से पृथक् ही काम करता है। 'ज्ञान' और 'विकल्प' इन दोनों का भेदज्ञान ज्ञानी को (धर्मी को) सविकल्पदशा के समय भी रहता है। परंतु इस भूमिका में परिणाम की स्थिति कैसी होती है, उसको यहाँ बताना है। 'विषय-कषाय के किंचित्मात्र भी भाव हों तो वहाँ सम्यग्ज्ञान होता ही नहीं'—ऐसा कोई मानता है तो यह भी सत्य नहीं है, अथवा 'विषय-कषाय के परिणाम सर्वथा ही छूटकर वीतराग हो जाये तब ही सम्यग्ज्ञान हो'—ऐसा कोई कहे-माने, तो वह भी सत्य नहीं है। हाँ, सत्य इतना है कि ज्ञानी को विषय-कषाय का रस अंतर में से सर्वथा दूर हो जाता है। इन विषय-कषायों में कहीं भी अंशमात्र भी आत्मा का हित अथवा सुख उसे दृष्टि में नहीं आता, अनुभव में नहीं आता; इसलिये इनमें स्वच्छंदता से आचरण नहीं करता। यह 'सदन निवासी तदपि उदासी' होता है।

इसप्रकार धर्मी को सम्यग्ज्ञानसहित शुभ-अशुभ परिणाम भी होते हैं किंतु उससे कहीं उसकी सम्यग्श्रद्धा-ज्ञान दूषित नहीं हो जाते। ज्ञान परिणाम पृथक् हैं और शुभाशुभ परिणाम पृथक् हैं, दोनों की धारा पृथक् है। 'विकल्प' और 'ज्ञान' की भिन्नता का भान (ध्यान) विकल्प के समय भी दूर नहीं होता। उपयोग भले ही पर को जानने में रुक गया हो, उससे कहीं श्रद्धा और ज्ञान मिथ्या नहीं हो जाते। इसप्रकार धर्मी के सविकल्पदशा के समय भी सम्यक्त्व की धारा ऐसी की ऐसी ही काम करती रहती है।

'केवलज्ञान का टुकड़ा'

आत्मज्ञान की अचिंत्य महिमा

....जानने में पदार्थों को विपरीत नहीं साधता-नहीं मानता, इसलिये वह सम्यग्ज्ञान केवलज्ञान का अंश है। जिसप्रकार थोड़े मेघपटल के दूर होने पर जो कुछ भी प्रकाश प्रगट हो, वह सर्व प्रकाश का अंश है। जो ज्ञान सम्यक्मतिश्रुत के रूप में कार्य करता है, वही ज्ञान वृद्धि को प्राप्त होता हुआ केवलज्ञानरूप हो जाता है, इससे सम्यग्ज्ञान की अपेक्षा से तो दोनों की जाति एक है।

अहा! देखो, इस सम्यग्ज्ञान की केवलज्ञान के साथ संधि! मति-श्रुतज्ञान को केवलज्ञान का अंश कौन कह सकता है?—कि जिसने पूर्ण ज्ञानस्वभाव को प्रतीति में लिया है और उस स्वभाव के आधार से सम्यग्ज्ञान का अंश प्रगट किया है। वही पूर्णता के साथ की मित्रता (पूर्णता के लक्ष्य से) से कह सकता है कि मेरा यह ज्ञान जो है, वह केवलज्ञान का अंश है, केवलज्ञान की ही जाति का है। परंतु राग में ही जो लीनता (मग्नता) करता हो, उसका ज्ञान तो राग का (रागयुक्त) बन गया है, उसको तो राग से पृथक् ज्ञानस्वभाव की ही खबर नहीं, वहाँ 'यह ज्ञान उस स्वभाव का अंश है' ऐसा वह किसप्रकार जान सकता है? ज्ञान को ही वह 'पर' से और 'राग' से पृथक् जानता ही नहीं, वहाँ उसको स्वभाव का अंश कहने का क्या काम रहा? स्वभाव के साथ जो (राग की) भिन्नता करता है, वही अपने ज्ञान को 'यह स्वभाव का अंश है' ऐसा जान सकता है। राग के साथ एकत्वबुद्धिवाला इस बात को जान सकता नहीं।

अहा, यह तो अलौकिक बात है! मति-श्रुतज्ञान को स्वभाव का अंश कहना अथवा केवलज्ञान का अंश कहना, इसप्रकार की बात को अज्ञानी नहीं समझ सकता। कारण कि उसको राग और ज्ञान परस्पर मिले हुए दिखाई देते हैं। ज्ञान तो निःशंकता से जानता है कि-जितना रागादि का अंश हे, वह सभी मेरे से परभाव है और जितना ज्ञानादि अंश है, वह सभी मेरा स्वभाव है, वह सभी मेरे स्वभाव के ही अंश हैं, और वही अंश, वृद्धि को प्राप्त होते-होते केवलज्ञानरूप बनते हैं।

प्रश्न—चार ज्ञान को तो 'विभाव' ज्ञान कहा गया है, उनको यहाँ स्वभाव का अंश क्यों कहा ?

उत्तर—उनको 'विभाव' कहा है, अपूर्णता की अपेक्षा से; सम्यक् मति-श्रुत-अवधि-मन:पर्यय इनको कहीं विरुद्ध जाति (रागादि जैसे) की अपेक्षा से विभाव नहीं कहा गया। ये चारों ज्ञान तो स्वभाव के ही अंश हैं... स्वभाव की जाति के; परंतु अभी वे अपूर्ण हैं और इन अपूर्ण के आश्रय से पूरा ज्ञान प्रगट होता नहीं। अर्थात् पूर्ण स्वभाव का आश्रय कराने के हेतु से अपूर्ण ज्ञानों को 'विभाव' कह दिया गया है। परंतु जैसे रागादि विभाव तो स्वभाव से ही विरुद्ध हैं-इनकी जाति ही पृथक् है, परंतु ज्ञान की जाति पृथक् नहीं, ज्ञान तो स्वभाव से अविरुद्ध जाति का ही है। जैसे पूर्ण प्रकाश से जगमगाते सूर्य से मेघ के कुछ हट जाने पर जो प्रकाश की किरणें दिखाई देती हैं, वह सूर्य-प्रकाश का ही अंश है। वैसे ही ज्ञानावरणादि मेघ दूर होने पर सम्यक् मति-श्रुतज्ञानरूपी किरण प्रगट हुईं वे, केवलज्ञान के पूर्ण प्रकाश से जगमगाते उस चैतन्य सूर्य के प्रकाश का ही अंश है। सम्यक् मति-श्रुतरूप जो अंश हैं, वह सभी चैतन्यसूर्य का ही प्रकाश है। जैसे द्वितीया का चंद्रमा वृद्धि को प्राप्त होता हुआ पूर्ण चंद्ररूप बन जाता है, उसीप्रकार सम्यक् मति-श्रुतज्ञान भी वृद्धि को प्राप्त होता-होता केवलज्ञानरूप बन जाता है। मति-श्रुतज्ञान की पर्याय तो परिवर्तित होती हे, वह स्वयं केवलज्ञानरूप नहीं बनती, अर्थात् पर्याय अपेक्षा वही नहीं है। परंतु सम्यक् जाति अपेक्षा से ही मति-श्रुतज्ञान वृद्धिंगत होता होता केवलज्ञान हुआ, ऐसा कहा जाता है। पाँचों ज्ञान सम्यग्ज्ञान के ही प्रकार हैं अर्थात् केवलज्ञान और मतिज्ञान दोनों 'सम्यक्' अपेक्षा से समान हैं, दोनों की जाति एक ही है। केवलज्ञान से लगाकर मतिज्ञान तक ये पाँचों सम्यग्ज्ञान-ज्ञानस्वभाव की ही विशेष अवस्था हैं। उनमें केवलज्ञान, यह बड़ा महान अंश है और मतिज्ञानादि भले ही लघु हैं, फिर भी केवलज्ञान की ही जाति के हैं। शास्त्र में (जयधवला में) वीरसेनस्वामी ने गणधरों को 'सर्वज्ञपुत्र' कहा है, इसी तरह यहाँ कहते हैं कि मति-श्रुतज्ञान ये केवलज्ञान के पुत्र हैं, सर्वज्ञता के अंश हैं। जैसे सिद्ध भगवान का पूर्ण अतीन्द्रिय आनंद और समकिती का अपनी भूमिका-योग्य अतीन्द्रिय आनंद, ये दोनों आनंद एक ही जाति के हैं। मात्र पूर्ण और अपूर्ण का ही भेद है, परंतु जाति में तो किंचित् भी भेद नहीं है, अर्थात् समकिती का आनंद तो सिद्धभगवान के आनंद का ही थोड़ा अंश है; आनंद की तरह ही उसका मतिज्ञान भी केवलज्ञान का अंश है।—पूर्ण और अपूर्णता का भेद होने पर भी, दोनों की जाति में किंचित्मात्र भी भेद नहीं है।

भाई ! तेरा ज्ञान केवलज्ञान की जाति का ही है, परंतु कब ? कि जब तू अपने स्वभाव का सम्यग्ज्ञान करेगा तब। अभी तो वर्तमान में यदि तू शुभराग को मोक्ष का कारण मानता हो, व्यवहार के अवलंबन द्वारा मोक्षमार्ग होता है, ऐसा मानता हो; जड़ देह की क्रियाओं को आत्मा की मानता हो और इन क्रियाओं से धर्म होता है, ऐसा मानता हो, उसको तो कहते हैं कि भाई ! तेरा सभी ज्ञान मिथ्या है। अभी तो तुझे सर्वज्ञ प्ररूपित नवतत्त्वों की ही खबर नहीं है, सर्वज्ञस्वभाव का (केवलज्ञान का) तुझे निर्णय नहीं, वहाँ केवलज्ञान का अंश कैसा है ? उसकी पहिचान तुझे कहाँ से हो सकती है ? मेरा यह ज्ञान केवलज्ञान का अंश है—ऐसा बराबर निर्णय करे, उसकी दृष्टि और ज्ञानपरिणति तो ज्ञानस्वभाव के अंदर गहराई से उतर गई है। वह शुभराग में धर्म मानकर उसमें ही रुका हुआ नहीं रहता; वह तो राग से भी पार (उल्लंघन करके) ज्ञानस्वभाव के अंदर प्रवेश कर जाता है। ऐसा ज्ञान ही केवलज्ञान की जाति का बनकर केवलज्ञान को प्राप्त करता है। सम्यक् मति-श्रुत अगर केवलज्ञान की जाति का न हो और विजातीय हो, तो वह केवलज्ञान को किसप्रकार साध सकता है ?

केवलज्ञान की जाति का हो, वही केवलज्ञान को साध सकता है। 'राग' केवलज्ञान की जाति का नहीं, इससे यह केवलज्ञान को नहीं साध सकता; मति-श्रुत सम्यग्ज्ञान, केवलज्ञान की जाति का है, इससे अंतर में एकाग्र होकर केवलज्ञान को साधता है। एक बार सम्यग्ज्ञान ज्योति प्रगट हुई, फिर वह कभी बुझनेवाली नहीं; वह तो वृद्धिंगत होती-होती केवलज्ञान प्राप्त कर लेगी।

देखो भाई ! यह बात सूक्ष्म और गंभीर तो है, परंतु अपने परम हित की बात है, इसलिये ध्यान रखकर मुख्यता से प्रथम समझने जैसी है। ध्यान रखकर अंतर से समझना चाहे तो अवश्य समझ में आ जावे ऐसी है। यह कोई किसी की दूर-दूर की बात नहीं, परंतु अपने आत्मा में जो स्वभाव कार्य कर रहा है, उसकी ही यह बात है। इसलिये 'यह बात मेरी आत्मा की ही है' इसप्रकार अंतर में मुँह (झाँक) करके समझे तो तुरंत समझ में आ जाये और समझते ही अपूर्व आनंद आता है, ऐसी यह बात है।

प्रश्न—छद्मस्थ जीव केवलज्ञान का स्वरूप कहाँ से समझ सकता है ?

उत्तर—छद्मस्थ ज्ञानी भी केवलज्ञान के स्वरूप का बराबर (सही) निर्णय कर सकता है। इसने ज्ञान को स्वसन्मुख करके सर्वज्ञता की अखंड सामर्थ्य से परिपूर्ण ऐसा अपने ज्ञानस्वभाव का निर्णय किया है, उसमें केवलज्ञान का स्वरूप भी स्पष्ट प्रतिभासित हो गया है।

जो केवलज्ञान को ही नहीं समझता, वह मोक्षतत्त्व तथा मोक्षमार्ग को भी नहीं समझता, और जो मोक्षमार्ग को ही न समझे, वह धर्म कहाँ से समझ सकता है? धर्म कैसे कर सकता है? जिसप्रकार किसी सज्जन के पास एक रुपया सच्चा हो, भले ही अरब रुपया उसके पास नहीं, इससे क्या अरब रुपयों को वह नहीं पहिचान सकता? जिस जाति का मेरे पास यह रुपया है, उसी जाति के अरब रुपये होते हैं, ऐसा वह सही (बराबर) नि:शंकता से जान सकता है; उसीप्रकार समकिती मति-श्रुतज्ञानी भी, भले ही उसे केवलज्ञान प्रगट न हो, परंतु शुद्धात्मा की श्रद्धा के बल द्वारा ज्ञानस्वभाव का भी यथार्थ निर्णय करके 'केवलज्ञान कैसा है' ऐसा उसने बराबर (सही) जान लिया है, और वह केवलज्ञान की जाति का ही 'मेरा यह सम्यग्ज्ञान है'—ऐसा वह नि:शंकता से जानता है। हजार पांखड़ीवाले कमल की जो कली पहले थोड़ी खिली, वही वृद्धिंगत होकर पूर्ण खिलती है, उसीप्रकार अनंत पांखड़ीवाला जो चैतन्य कमल, उसमें सम्यग्दर्शन होते ही जो मति-श्रुतरूप थोड़ी ज्ञानकला खिली, वही कला स्वरूप में एकाग्रता द्वारा बढ़ते-बढ़ते केवलज्ञानरूप पूर्ण कला में खिल जायेगी। इसप्रकार सम्यग्ज्ञान की अपेक्षा से मति-श्रुत और केवलज्ञान की जाति एक ही है। इस चिट्ठी में ही आगे-चलकर अष्टसहस्री का आधार देकर कहा कि केवलज्ञान की तरह श्रुतज्ञान भी सर्व तत्त्वों को बतलानेवाला है। मात्र प्रत्यक्ष और परोक्ष का ही उसमें भेद है। परंतु वस्तुस्वरूप से वह एक-दूसरे से पृथक् नहीं है।

सम्यग्दृष्टि को शुद्धात्मा की प्रतीतिरूप सम्यक्श्रद्धा हुई है, स्व-पर के यथार्थ भेदज्ञान द्वारा सम्यक् मति-श्रुतज्ञानरूप 'केवलज्ञान का अंश' प्रगट हुआ है।

अचिंत्य महिमावंत

आत्मशक्ति

गत मगसर-पौष मास में समयसार की ४७ शक्तियों के ऊपर जो भावभीने प्रवचन हुए उसका कितना ही सार भाग यहाँ देने में आया है।

लेखांक नं० ४ (गतांक से प्रारंभ)

(७६) मलिनता को 'आत्मा' कौन कहता है ?

अरे, राग तो मलिन भाव है, उसके सेवन से जो तू आत्मा के धर्म का लाभ मानता हो तो तैंने संपूर्ण भगवान आत्मा को मलिन मान लिया है। अरे, कहाँ पवित्रता का संपूर्ण पिंड चैतन्यस्वभाव और कहाँ रागादि मलिन भाव? जिसके सेवन से अबंधपना प्रगट नहीं हो सकता, और जिसके सेवन से आत्मा बंध को प्राप्त हो—ऐसे मलिन भाव को 'आत्मा' कौन कहता है ? और ऐसे मलिन भाव का कर्तृत्व पवित्र आत्मा को कैसे हो सकता है ? इसका ज्ञान भले ही रहो, परंतु इसका कर्तृत्व रहता नहीं। आत्मा जहाँ वास्तव में 'आत्मारूप' होकर (निर्मलपर्यायरूप) परिणत हुआ, वहाँ उसमें विकार का-दुःख का-राग का कर्तृत्व, भोक्तृत्व नहीं, वह निर्मल भावों को ही करता है और आनंदमय वीतराग भाव को ही भोगता है।

(७७) साधकदशा

साधक भूमिका में दो प्रकार एक ज्ञाताभाव में तन्मयरूप परिणाम, दूसरा ज्ञाताभाव से पृथक् परिणाम; उनमें से धर्मी जीव को ज्ञाताभाव से अभिन्न ऐसा वीतरागी-आनंदरूप परिणाम का कर्ता-भोक्तापन रहता है; परंतु ज्ञाताभाव से भिन्न ऐसे रागादि-आकुलता के परिणाम का कर्ता-भोक्ता धर्मी नहीं रहता है।

(७८) चैतन्य राजा की परिणति

जिसप्रकार चक्रवर्ती की रानी भिखारिन नहीं होती, उसीप्रकार चैतन्य राजा की परिणति 'विकारी' नहीं होती, इसकी परिणति तो इसके जैसी निर्मल निर्विकारी होती है, इसी को यह भोगता है। पर परिणति का भोग करे, ऐसा चैतन्य राजा का स्वभाव नहीं है।

(७९) विस्मयकारी स्वतत्त्व

अरे, एक बार अपने चैतन्यसुख को तू देखे तो तुझे जगत में दूसरे किसी अन्य स्थान से

सुख प्राप्त करने की मिथ्या-आकांक्षा दूर हो जायेगी। जगत का विस्मय दूर कर और परम विस्मयकारी (आनन्दकारी) ऐसे निजतत्त्व को अंदर में देख। कभी नहीं देखी, ऐसी वैभववाली वस्तु तुझे अपने में दिखेगी... कभी ऐसा स्वाद प्राप्त नहीं हुआ, ऐसा स्वानुभव का स्वाद तुझे अपने में वेदन में (चखने में) आयेगा।—इसलिये जगत का कुतूहल दूर करके और अपने चैतन्य को देखने का कुतूहल करके उसका उद्यम (पुरुषार्थ) कर।

(८०) साधक का चित्त परभाव में कहीं पर भी स्थिर नहीं होता; चैतन्यस्वभाव में ही उसका चित्त स्थिर होता है:—

अरे, इस संसार की चारों गतियों में भ्रमण कर-करके विभाव के दु:ख कैसे होते हैं, वह मैंने देख लिया... अब यह स्वानुभव चैतन्य सुख कैसा है, यह भी देखा... जिससे अब इस चैतन्य सुख के अलावा अन्य किसी भी परभाव में हमारी प्रीति नहीं नहीं। जैसे 'भक्तामर' स्तोत्र में स्तुतिकार कहते हैं कि—हे प्रभो! मैंने पहले अज्ञानदशा में अनेक कुदेवों को देखा, परंतु केवल आपको ही मैंने कभी नहीं देखा, अब आपको देखने से और आपके स्वरूप को पहिचानने से, दूसरे किसी भी कुदेवादि में मेरा हृदय स्थिर नहीं होता, आपके अलावा अन्य कहीं पर भी प्रेम जागृत नहीं होता, कुदेवादि को देखते हुए भी हृदय तो आपकी ओर ही झुकता है, उसीप्रकार यहाँ पर साधक कहता है कि हे नाथ! संसार के सभी व्यवहार के परभावों को मैंने जान लिया है, परंतु एक चिदानंदस्वभाव को मैंने आज तक नहीं पहिचाना था; अब इस चिदानंदस्वभाव को पहिचानते दूसरे कहीं भी अन्य स्थानों में (परभावों में) हमारा चित्त स्थिर नहीं होता, चैतन्यस्वभाव के अलावा अन्य किसी से भी प्रेम नहीं होता। परभावों को जानते हुए भी हमारा हृदय तो स्वभाव की ओर ही जाता है। परभाव की प्रीति को अब हमारे आत्मा में स्थान है ही नहीं।

(८१) अनंत सामर्थ्य से भरा हुआ चैतन्य कलश

आत्मा में ज्ञानादि जो अनंत गुण हैं, वे अपने निर्मलभाव में तद्रूपता से परिणमन करते हैं, और परभावों में अतद्रूपता से परिणमन करते हैं, ऐसा अनेकांत आत्मा की सर्व शक्तियों में प्रकाशित हो रहा है।

आत्मा में अनंत शक्ति भरी हुई है। और प्रत्येक शक्ति में अपनी-अपनी पर्यायरूप पूर्ण शुद्ध कार्य करने की शक्ति है। और एक-एक पर्याय परिपूर्ण सामर्थ्य से भरपूर है। इसप्रकार द्रव्य-गुण-पर्याय के सामर्थ्य से भरा हुआ चैतन्य कलश है।

सम्यग्दृष्टि का सभी ज्ञान सम्यक्,

वह मोक्षमार्गरूप निजप्रयोजन को साधता है

सम्यक्त्व होने के साथ ही, जो ज्ञान (पूर्व में) पाँच इन्द्रिय तथा छट्ठे मन द्वारा क्षयोपशमरूप मिथ्यात्वदशा में 'कुमति-कुश्रुत' रूप बन रहा था, वही ज्ञान अब 'मति-श्रुत' रूप सम्यग्ज्ञान हो गया। सम्यग्दृष्टि जो भी जानता है, वह सब जानना सम्यग्ज्ञानरूप है। यह (सम्यग्दृष्टि) जो कदाचित् घटपटादि पदार्थों को अयथार्थता से जानता है तो वह आवरणजनित उदय का अज्ञानभाव है और क्षयोपशमरूप प्रगट ज्ञान है, वह सभी सम्यग्ज्ञान ही है, कारण कि जानने में पदार्थों को विपरीतरूप से साधता नहीं।

(मोक्षमार्गप्रकाशक, पृष्ठ ३४३-३४४, गुजराती)

देखो, समकिती सम्यग्ज्ञान। जहाँ शुद्धात्म-श्रद्धानरूप निश्चय सम्यक्त्व हुआ, वहाँ सभी ज्ञान भी स्व-पर की भिन्नता को यथार्थ जानता हुआ सम्यक्रूप परिणमा, अर्थात् ज्ञानी का सभी ज्ञान 'सम्यग्ज्ञान' हो गया। कदाचित् क्षयोपशम के दोष से बाहर के अप्रयोजनभूत कोई पदार्थ (घट-पट-रस्सी आदि) अयथार्थ जानने में आ जाये तो भी उस कारण से मोक्षमार्गरूप प्रयोजन साधने में किसी प्रकार की विपरीतता होती नहीं; कारण कि अंतर की प्रयोजनरूप वस्तु को जानने में किसी प्रकार की विपरीतता उसको होती नहीं; भीतर में 'राग' को ज्ञानरूप और 'शुभराग' को मोक्षमार्गरूप जाने, ऐसे प्रयोजनभूत तत्त्वों में विपरीतता ज्ञानी को होती नहीं। प्रयोजनभूत तत्त्व-जीवादि सात तत्त्व, स्वभाव-विभाव की भिन्नता, स्व-पर की भिन्नता आदि को तो उसका ज्ञान यथार्थ ही जानता है, इससे उसका सभी ज्ञान सम्यग्ज्ञान ही है और अज्ञानी कभी रस्सी को रस्सी, सर्प को सर्प जाने, डाक्टरपना, वकीलात, ज्योतिषी इत्यादि अप्रयोजनरूप तत्त्वों को पहिचाने, तो भी स्व प्रयोजन को सिद्ध करनेवाला ज्ञान नहीं होने से उसका सभी जानना मिथ्याज्ञान है। स्व-पर की भिन्नता और कारण-कार्य इत्यादि में उसकी भूल होती है। अहा! यहाँ तो कहते हैं कि मोक्षमार्ग को साधने में जो ज्ञान काम आवे, उसमें विपरीतता नहीं हो, वही सम्यग्ज्ञान है; और भले ही बाहर का चाहे-जितना ज्ञान हो, परंतु मोक्षमार्ग को साधने में जो ज्ञान काम नहीं आवे; उसमें जिसको विपरीतता हो, वह मिथ्याज्ञान

है। जगत में सबसे मूल प्रयोजनरूप मुख्य वस्तु शुद्धात्मा है, इसको जानने से स्व-पर सभी का सम्यग्ज्ञान हो गया। इससे श्रीमद् राजचन्द्रजी ने कहा है कि "जिसने आत्मा जाना, उसने सर्व जगत जाना और अनंत काल से जो ज्ञान केवल भव-वृद्धि में ही कारण बनता था, वही ज्ञान एक समय मात्र में अपनी जाति बदलकर जिससे भव-निवृत्ति हो, ऐसा बन गया—ऐसे कल्याणमूर्ति सम्यग्दर्शन को नमस्कार।" ऐसे सम्यग्दर्शन बिना सभी ज्ञान और सभी आचरण व्यर्थ है।

देखो, यह साधर्मी के साथ की चर्चा! दो सौ वर्ष पहले साधर्मियों के प्रश्न आये, उनका प्रेमपूर्वक उत्तर पंडित टोडरमलजी ने लिखा है। 'निश्चय सम्यग्दर्शन' प्रत्यक्ष और 'व्यवहार सम्यग्दर्शन' परोक्ष - ऐसा है कि नहीं? इत्यादि प्रश्नों के उत्तर में सम्यग्दर्शन की और स्वानुभूति इत्यादि की अध्यात्मरहस्य भरी चर्चाएँ इसमें लिखी हैं, इससे उसको 'रहस्यपूर्ण चिट्ठी' कहते हैं। इसमें कहते हैं कि सम्यक्त्व में प्रत्यक्ष और परोक्ष का भेद नहीं; प्रत्यक्ष और परोक्ष ऐसे भेद तो ज्ञान में पड़ते हैं, सम्यक्त्व तो शुद्धात्मा की प्रतीतिरूप निर्विकल्प है। ज्ञान का उपयोग समकिती का 'स्व' में हो या 'पर' में, उस समय भी उसका सम्यक्त्व ऐसा का ऐसा ही विद्यमान रहता है।

यहाँ तो कहते हैं कि समकिती कदाचित् रस्सी को सर्प समझ जाये—इत्यादि प्रकार से बाहर के अप्रयोजनरूप पदार्थ अन्यथा जानने में आ जायें, तो भी उसका ज्ञान सम्यग्ज्ञान ही है, कारण कि इसमें ज्ञान के सम्यक्त्व की भूल नहीं है, परंतु यह तो उसप्रकार के क्षयोपशम का अभाव है; ज्ञानावरण के उदय में आनेवाले अज्ञानभाव बारहवें गुणस्थान तक होते हैं। इस अपेक्षा से उसको 'अज्ञान' भले ही कहने में आवे, परंतु मोक्षमार्ग साधने और न साधने की अपेक्षा से जिसे सम्यग्ज्ञान व मिथ्याज्ञान कहने में आया है, उसमें तो समकिती का सभी सम्यग्ज्ञान ही है, उसको जरा भी मिथ्याज्ञान नहीं है। उसको रस्सी को रस्सी न मानकर सर्प की कल्पना हो गई तो इसकारण से कहीं उसके ज्ञान में स्वपर की एकत्वबुद्धि और रागादि परभावों में तन्मयबुद्धि नहीं हो गई, इसलिये उसका ज्ञान 'मिथ्या' होता नहीं। उस समय भेदज्ञान तो यथार्थता से ही है, इससे उसका सभी ज्ञान सम्यग्ज्ञान ही है। लोगों को बाहर के जानने के ज्ञान की जितनी महिमा है, उतनी अंदर के 'भेदज्ञान' की महिमा नहीं है। सम्यग्दृष्टि का ज्ञान प्रतिक्षण अंदर में क्या काम करता है, उसको लोगों को पता नहीं है। प्रतिक्षण अन्दर में 'स्वभाव' को 'परभाव' से पृथक् करने का अपूर्व कार्य उसके ज्ञान में हो रहा है। यह ज्ञान

स्वयं राग से पृथक् होकर स्वभाव की जाति का हो गया है, यह तो केवलज्ञान का टुकड़ा है। आगे इसको 'केवलज्ञान का अंश' कहा जायेगा। यह ज्ञान, इन्द्रिय-मन द्वारा नहीं हुआ, परंतु आत्मा द्वारा हुआ है।

ज्ञानी को अपने ज्ञान की समस्त परभावों से भिन्नता अनुभव में आ गई है अर्थात् प्रथम अज्ञानदशा से राग में और इन्द्रियों में तन्मय होकर जो ज्ञान काम करता था, वह ज्ञान अब अपने स्वभाव में ही तन्मय रहकर कार्य करता है। 'मेरा ज्ञान तो सदा ज्ञानरूप ही रहता है, रागरूप मेरा ज्ञान होता नहीं', इसप्रकार ज्ञान को ज्ञानरूप ही रखता वह सदा भेदज्ञानरूप, सम्यग्ज्ञानरूप ही परिणमता है। इसप्रकार उसका सभी ज्ञान सम्यग्ज्ञान ही है-ऐसा जानना। एक जीव बहुत शास्त्र पढ़ा हो और महान त्यागी होकर हजारों जीवों से पूजित होता हो, परंतु जो शुद्धात्मा के श्रद्धानरूप निश्चय सम्यक्त्व न हो तो इसका सभी जानना मिथ्या ही है; दूसरा जीव छोटा मेंढ़क, मच्छी, सर्प, सिंह और बालकदशा में हो, शास्त्र के शब्दों का वांचन करना नहीं आता हो, फिर भी जो शुद्धात्मा के श्रद्धानरूप 'निश्चय सम्यक्त्व' सहित है, तो इसका सभी ज्ञान सम्यक्त्व है, और यह मोक्ष के पंथ पर है; सभी शास्त्रों के रहस्यरूप अंदर के स्वभाव-परभाव का भेदज्ञान उसने स्वानुभव से जान लिया है। 'अंदर में जो बाहर तरफ के शुभ और अशुभ विचार उठते हैं, वह मैं नहीं, उनके वेदन में मेरी शांति नहीं; मैं तो ज्ञानानंद हूँ—कि जो वेदन में मुझे शांति अनुभव में आती है'—इसप्रकार अंतर के वेदन में उस समकिती को भेदज्ञान और शुद्धात्मा की प्रतीति चालू है। शुद्धात्मा से विरुद्ध किसी प्रकार के भाव में उस को कभी भी आत्मबुद्धि होती नहीं। जब से सम्यग्दर्शन हुआ, तभी से ज्ञान इसप्रकार राग से पृथक् काम करने लग गया, इसलिये सम्यग्दृष्टि जो भी जानता है, वह सभी सम्यग्ज्ञान है, ऐसा कहा। ज्ञान का विकास कम हो अथवा अधिक हो, इसके ऊपर से सम्यक्-मिथ्यात्वपन का नाप नहीं, परंतु यह ज्ञान किस ओर काम कर रहा है, किसमें तन्मयता से रहता है, इसके ऊपर से उसके सम्यक् मिथ्यात्वपने का नाप होता है। जो स्वभाव में तन्मय रहता हो तो 'सम्यक्' है, परभाव में तन्मय रहता हो तो 'मिथ्या' है। ज्ञानी का उपयोग पर को जानने में रहता हो तो हो, इससे यह न समझना कि उस समय उसका उपयोग पर में तन्मय हो गया है; इस समय भी अंतर के भान सहित उपयोग 'पर' से अलग का अलग ही चल रहा है। 'स्व' में तन्मयता की बुद्धि इस समय भी उसको छूटी हुई नहीं है। यह तो ज्ञानी के अंतर की अलौकिक

वस्तु है, इसका नाप बाहर से समझ में आ जाये, ऐसा नहीं। शुभ-अशुभ परिणाम द्वारा उसका नाप निकले, ऐसा भी नहीं। अंतर्दृष्टि क्या काम करती है, इसका नाप अंतर्दृष्टि से ही समझ में आ सकता, ऐसा है।

अरे भाई! एक बार यह बात लक्ष्य में तो ला, तो तेरा उत्साह 'पर' की ओर से हट जायेगा और उसको 'स्वभाव' का उत्साह उत्पन्न होगा। मूलस्वभाव का ज्ञान करना, यही मोक्षमार्ग में प्रयोजनरूप है।

कोई कहता है कि—'धर्मी हुआ और आत्मा को जाना और फिर पर संबंधी सभी ज्ञान उसको हो जाये?' तो कहते हैं कि नहीं। सभी पर पदार्थों को जान ही ले, ऐसा नियम नहीं। ज्ञान का विकास जैसा हो, उस अनुसार जाने; उसे कदाचित् उसप्रकार का विकास न होने के कारण, रस्सी को सर्प इत्यादि प्रकार से विपरीत जाने तो भी ''रस्सी' और 'सर्प' से मैं पृथक् हूँ'' मैं ज्ञान हूँ—ऐसा स्व-पर की भिन्नता का यथार्थ ज्ञान तो उसको रहता ही है, वह हटता नहीं। रस्सी को रस्सी जाना हो, 'उस समय भी मैं रस्सी से और राग से पृथक् हूँ' सर्प को सर्प जाना हो, उस समय भी 'मैं सर्प से पृथक् हूँ'—रस्सी और सर्प जाना हो, उस समय भी 'मैं उनसे पृथक् ही हूँ'—ऐसा जानता है। इसप्रकार स्व-पर की भिन्नता जानते समय सम्यक्त्व में किसी प्रकार अंतर नहीं हुआ। 'आत्मा' का ज्ञान होने पर तुरंत 'पर' को जानने की शक्ति का विकास हो ही जाता है, ऐसा नियम नहीं। कोई अज्ञानी ज्योतिष आदि जानता हो और ज्ञानी को उसका ज्ञान नहीं भी हो; अज्ञानी यहाँ बैठा-बैठा विभंग ज्ञान के द्वारा स्वर्ग-नरक को देखता भी हो, ज्ञानी को वैसा विकास ज्ञान न भी हो। अज्ञानी गणित इत्यादि जानता हो, उसमें उसकी किंचित् मात्र भी भूल नहीं होती हो, पर इस ज्ञान का धर्म में किंचित् मात्र भी मूल्य नहीं है। ज्ञानी को कदाचित् गणित इत्यादि का ज्ञान न हो, दृष्टांत देने में भूल भी होती रहे, फिर भी उसका ज्ञान 'सम्यक्' है, 'स्व' को स्व और 'पर' को पररूप साधने में मूलभूत यथार्थता में उसकी भूल नहीं। अज्ञानी स्व-पर को, स्वभाव-परभाव को एक-दूसरे में मिलाकर जानता है, इसलिये उसका सभी ज्ञान असत्य है। बाहर के ज्ञान का विकास पूर्व क्षयोपशम के अनुसार कम-अधिक हो, परंतु जो ज्ञान अपने भिन्न स्वभाव को भूलकर जाने, वह 'अज्ञान' है, और अपने भिन्न स्वभाव का भान रखकर जो जानता है, वह 'सम्यग्ज्ञान' है। संसार संबंधी कुछ भी ज्ञान न हो या कम हो, उससे कहीं ज्ञान 'मिथ्या' नहीं हो जाता। और संसार का चातुर्य सहित अधिक ज्ञान भी हो तो उससे

कहीं ज्ञान 'सम्यक्' नहीं बन जाता। इसका आधार तो शुद्धात्मा के श्रद्धान ऊपर ही है; शुद्धात्मा का श्रद्धान जहाँ है, वहाँ 'सम्यग्ज्ञान' है; शुद्धात्मा का जहाँ श्रद्धान नहीं, वहाँ 'मिथ्याज्ञान' है। अर्थात् बाहर का ज्ञान कम हो तो इसका ज्ञानी को दु:ख नहीं, और बाहर का ज्ञान विशेषता से हो तो भी ज्ञानी को उसकी महिमा नहीं। महिमावंत तो आत्मा है, उसको जिसने जान लिया, वही ज्ञान की महिमा है। अहो! जगत से पृथक् मेरे आत्मा को मैंने जान लिया तो मेरे ज्ञान का प्रयोजन मैंने साध लिया है, इसप्रकार निज-आत्मा के ज्ञान से ज्ञानी संतुष्ट है-तृप्त है।

अहा, आत्मज्ञान की महिमा अचिंत्य है। इस ज्ञान की महिमा भूलकर बाहर के ज्ञान की महिमा में जीव रुक रहा है। संसार के किसी निष्प्रयोजन पदार्थ को जानने में भूल हुई तो भले ही हुई, परंतु ज्ञानी कहता है कि मेरे आत्मा को जानने में मेरी भूल नहीं... हमारे आतमराम को हम भूलते नहीं। इसप्रकार की ज्ञान की मस्ती और नि:शंकता कोई अद्‌भुत है! अनंत गुणों से परिपूर्ण स्वभाव की प्रतीति का बल उस ज्ञान के साथ चल रहा है। इससे ऐसे सम्यग्ज्ञान को 'केवलज्ञान का टुकड़ा' कहा गया है।

सर्वज्ञ का संदेश

[राजकोट शहर में पंच कल्याणक प्रतिष्ठा-महोत्सव के प्रसंग पर भगवान श्री आदिनाथ प्रभु ने केवलज्ञान कल्याणक के पश्चात् अपनी दिव्यध्वनि में क्या कहा-इसका साररूप प्रवचन]

भगवान ऋषभदेव परमात्मा को आज (ज्ञान कल्याणक के अवसर पर) केवलज्ञान हुआ है। इन्द्रों ने समवसरण की रचना की है। उस समवसरण में दिव्यध्वनि द्वारा भगवान उपदेश कर रहे हैं। सहज, बिना इच्छा के, भगवान की दिव्यवाणी प्रकाशित हो रही है। उस वाणी में भगवान क्या कहते हैं?

यह 'जीव' नामक पदार्थ देह से अत्यंत भिन्न है, उसका शुद्धस्वरूप रागादि-विकल्प रहित है। 'आत्मा शुद्ध है' ऐसे विकल्प से भी शुद्ध आत्मतत्त्व अनुभव में नहीं आता, इसलिये

ऐसे विकल्पों से भी बस हो... समयसार नाटक, जीवद्वार, कवित्त नं० २० में बनारसीदासजी स्वयं कहते हैं:—

एक देखिये जाजिए, रमि रहिये इक ठौर।
समल-विमल न विचारिये यही सिद्धि नहिं और॥

देखो, यह भगवान का कहा हुआ मोक्षमार्ग, जो विकल्प द्वारा नहीं सधता। महा आनंद की धाम चैतन्य-सत्ता अंतर में है, उसमें लीन होकर भगवान ने केवलज्ञान प्राप्त किया। ऐसे आनंदधाम आत्मा को पहिचान कर उस एक ही के अनुभव करने में लीन रहना, दूसरा भेद-विकल्प न उठाना, वही सिद्धि है, अर्थात् वही भगवान का कहा हुआ मोक्षमार्ग है।

जड़ से भिन्न वस्तु आत्मा है, वह जड़ के कार्य में क्या कर सकती है? जड़ में तो आत्मा का कुछ भी कर्तृत्व नहीं है और अपनी (आत्मा की) अवस्था भी दूसरों से (दूसरी आत्माओं से) नहीं होती, ऐसी स्वतंत्रता भगवान ने बतलाई है। स्वतंत्र वस्तु अपने अनंत गुणों से परिपूर्ण है। ऐसी वस्तु (स्वतंत्र आत्मा) शुभाशुभ-विकार से गम्य नहीं है। भेद के विकल्प से भी वह अगम्य है, केवल स्वानुभव-गम्य है।

हे भाई! तेरी 'सत् वस्तु' अंतरंग में जैसी है, वैसी तूने कभी लक्ष्य में ली नहीं। वह चैतन्य वस्तु के वेदन में साक्षात् अमृत है। राग तो आकुलता और दुःख है। अपने में भेद करके द्रव्य-गुण-पर्याय आदि के विचार करने से भी राग है, आकुलता है, दुःख है। वहाँ 'पर' की चिंता की बात तो कहाँ रही? 'भेद' के विचार से भी पार होकर 'द्रव्य-गुण-पर्याय' रहित अभेद वस्तु का साक्षात् अनुभव करने पर विकल्प मिट जाते हैं, और निर्विकल्प अनुभवरस का संवेदन होता है। ऐसा सत्य का मंत्र भगवान ने दिव्यध्वनि में बतलाया।

ऐसी वाणी सुनने पर अनेक जीव उसका रहस्य समझकर आत्मानुभव को प्राप्त हुए, चार संघों की स्थापना हुई और मोक्षगति का भरतक्षेत्र में असंख्यात वर्ष के पश्चात् प्रारंभ हुआ।

भगवान का कहना है कि स्वभाव के अनुभवी जीव परम सुखी हैं। प्रचुर आनंदस्वरूप स्व-संवेदनजन्य आत्म-वैभव मुनियों को प्रगट हुआ है। उनके स्व-संवेदन में प्रचुर आनंद का ज्वार उछलता है। उनके आनंद का कोई पार नहीं है; वे तो मानों परमात्मा और चलते हुये सिद्ध हैं...! मुनिदशा के परम आनंद की अज्ञानी को गंध भी नहीं होती। आत्मा के अनुभव रहित अज्ञानी जीव 'विकल्प' के बोझ से एकांत दुःखी हैं। आत्मा का अनुभव करना ही भगवान की दिव्यध्वनि का सार है। भगवान आत्मा अनुभव-प्रत्यक्ष है। उसे विकल्परहित भावश्रुतज्ञान

द्वारा प्रत्यक्ष किया जा सकता है। विकल्पात्मक ज्ञान द्वारा वह अनुभव में नहीं आता।

जहाँ सम्यग्दर्शन हुआ, स्वानुभव हुआ, वहाँ परिणमन का झुकाव मोक्षस्वभाव की ओर होता ही है, अर्थात् मुक्ति होती ही है, ऐसा कहा है। 'शुद्ध स्वरूपानुभवलक्षण सम्यक्त्वगुण' के प्रगट होने पर मुक्त होता है, ऐसा जीवद्रव्य का परिणाम है।

'अपने शुद्धस्वरूप का अनुभव करनेवाली जीववस्तु सदा मुक्तस्वरूप है' ऐसा शुद्धनय के द्वारा अनुभव में आता है। 'ऐसे शुद्धस्वरूप को जानना, अनुभव करना चाहिये' ऐसा भगवान का उपदेश है। मुक्ति पाने की प्रथम दिशा तो सम्यग्दर्शन है। सम्यग्दर्शनरूपी मांगलिक स्तम्भ आत्मा में जिसने स्थापित किया, उसने मोक्ष गमन के लिये तैयारी की। अहो..., सम्यग्दर्शन के एक क्षण के आनंद के सामने सभी जगत-वैभव तुच्छ है। सम्यग्दर्शन के होते ही आत्मा में मोक्ष के नगाड़े बजने लगते हैं।

हे आत्मन्! तू बहुत धैर्यवान बन। ....धैर्य रखकर विवेक के बल से अंदर आत्मा में देख। ....तेरी आत्मा में शांतरस का समुद्र भरा हुआ है; उस समुद्र में औदयिकभावरूपी मैल नहीं है। विकल्पों की आकुलता तेरे में नहीं है। ऐसे परम गंभीर ज्ञान-समुद्र का अनुभव विकल्पात्मक ज्ञान द्वारा नहीं होता, किंतु स्वानुभूतिरूप अनुभवज्ञान द्वारा ही होता है। 'अनुभवज्ञान' है तो 'श्रुतज्ञान', किंतु जो श्रुतज्ञान विकल्पों के विचार में रुक रहा है, उसमें तो आकुलता है, उसमें आत्मा की शांति का स्वाद नहीं है। ज्ञान, विकल्पों से हटकर केवल आत्मस्वभाव की ओर लक्ष्य हो तो ऐसे आत्मज्ञान द्वारा निर्विकल्प आनंदमय आत्मा का साक्षात् अनुभव होता है। जिस श्रुतज्ञान में आत्मा का अनुभव नहीं है, उसको 'विकल्परूप द्रव्यश्रुत' में ही गिना है। विकल्पों से रहित जो ज्ञान है, वह आत्मा का प्रत्यक्ष अनुभव है और उसी ज्ञान को वास्तव में 'ज्ञान' कहा जाता है। ऐसा ज्ञान इन्द्रियों से दूर, राग से दूर होता है और उसी के द्वारा शुद्धात्मा की अनुभूति होती है।

प्रचुर स्वसंवेदनरूप भगवान का मार्ग सुगम भी है और महंगा भी है। स्वानुभव द्वारा सीधा है, और विकल्पों के द्वारा प्राप्त नहीं होता, इससे महंगा भी है। आत्मा के निजस्वयप में आते ही 'विकल्प' खत्म हो जाते हैं। ऐसा अनुभव चतुर्थ गुणस्थान में चारों गतियों में प्राप्त किया जा सकता है।

सर्वज्ञ वीतराग कथित ऐसे उपदेश को सुनकर और उसे अंतर में उतारकर अनेक जीव आत्मिक धर्म को प्राप्त हुए, उनमें धर्म-वृद्धि हुई।

अध्यात्म संदेश

श्री कानजीस्वामी के प्रवचनों में श्रावक धर्म की अच्छी-अच्छी बातें

—ब्रह्मचारी हरिलाल जैन

धर्मी श्रावक को वीतरागी शास्त्रों के प्रति कैसी भक्ति होती है, और शास्त्रदान के व शास्त्र प्रचार के भाव कैसे होते हैं, इसका यह वर्णन चल रहा है। यदि अपने पास कोई विशिष्ट शास्त्र हो और दूसरे के पास में न हो, ऐसी परिस्थिति में यदि दूसरा यह शास्त्र पढ़ेगा तो वह मेरे से आगे बढ़ जायेगा ऐसा मेरा मान कम हो जायेगा—ऐसी ईर्ष्याबुद्धि से या मानबुद्धिसे वह शास्त्र दूसरे साधर्मी को न दें—माँगने पर भी न दें, तो ऐसे जीव को ज्ञान का सच्चा प्रेम नहीं है, साधर्मी का भी प्रेम नहीं है; अरे, शुभभाव का भी ठिकाना नहीं है। भाई! दूसरा साधर्मी आगे बढ़ता हो तो बढ़ने दे, तू उसका अनुमोदन कर।

जिसको ज्ञान का प्रेम हो, उसको अन्य भी ज्ञान प्राप्त करे, उसमें अनुमोदन आता है, ईर्ष्या नहीं आती। दूसरे के ज्ञान की यदि तुझे ईर्ष्या है तो तुझे शास्त्र पढ़के मान पोषने का अभिप्राय है, ज्ञान का प्रेम नहीं है। ज्ञान के प्रेमवालों को दूसरे के ज्ञान की ईर्ष्या नहीं आती, अनुमोदन आता है।

'ये तो आजकल के नये हैं, हम पुराने हैं, वे हमसे कैसे बढ़ गये?' ऐसी साधर्मी की ईर्ष्या धर्मी को नहीं होती। अरे भाई! कोई जीव हजारों लाखों वर्षों से सच्चा मुनि हुआ हो और मुनिधर्म पालता हो, किंतु इसको अभी केवलज्ञान न हुआ हो, और दूसरा कोई जीव आज ही मुनि होकर क्षपकश्रेणी चढ़कर केवलज्ञानी हो जाये, तब क्या पहले के मुनि को उसकी ईर्ष्या होगी कि हम तो हजारों-लाखों वर्ष पुराने मुनि हैं और यह तो आजकल के नये मुनि हुए, इसको केवलज्ञान कैसा? यदि ऐसी ईर्ष्या आ जाये तो वह मिथ्यादृष्टि हो जाये। क्योंकि उसको गुण का प्रेम नहीं आया।

अरे! कोई जीव धर्म में आगे बढ़े, वह तो अनुमोदनीय है। वाह! धन्य है इसको कि आज ही मुनि हुआ और आज ही केवलज्ञान पा लिया, मेरे भी वही इष्ट है, मुझे भी यही करने का है। इस तरह अनुमोदन करके अपने में भी ऐसा पुरुषार्थ जगाता है। किंतु ईर्ष्या करनेवाला

द्वेष में रुक जाता है। 'गुणिषु प्रमोद'—यह धर्मी की भावना है। ज्ञान के बहुमान का फल केवलज्ञान है। राग का फल केवलज्ञान नहीं है परंतु ज्ञान के बहुमान का फल केवलज्ञान है।

शास्त्रदान के बारे में कुन्दकुन्दस्वामी के पूर्व भव का दृष्टांत प्रसिद्ध है; पूर्व भव में वे एक सेठ के यहाँ गोपालक थे। उस गोपालक को एक बार जंगल में से कोई शास्त्र मिल गया। उसने अत्यंत बहुमान के साथ किसी मुनिराज को वह शास्त्र, दान में दिया। उस वक्त अव्यक्तरूप से ज्ञान की अचिंत्य महिमा का कोई भाव उसके अंतर में जगा। वहाँ से मरकर उसी सेठ के घर पुत्ररूप से वह जन्मा। कुन्दकुन्दकुमार उनका नाम। छोटी सी उम्र में मुनि हुए और उनको ज्ञान का अगाध समुद्र उल्लसित हुआ। अहा, उन्होंने तो सीमंधर तीर्थंकर की दिव्यवाणी साक्षात् सुनी और भरतक्षेत्र में ज्ञान के श्रोत बहाये। उनके अंतर में ज्ञान की अतीव शुद्धि प्रगट हुई। भरतक्षेत्र में श्रुत की प्रतिष्ठा करनेवाले वे कुन्दकुन्दस्वामी जैनशासन के स्तंभ हैं; हमारे ऊपर उनका बहुत उपकार है। भरतक्षेत्र में तीर्थंकर जैसा काम उन्होंने किया है।

ज्ञानस्वभाव की आराधना से धर्मी जीव सर्वज्ञ पद को साधता है। उसको कोई बार ऐसा भी हो कि अरे! इस भगवान के पास में थे, भगवान की वाणी सुनते थे और सब प्रश्नों का समाधान हो जाता था। अब भरतक्षेत्र में भगवान का तो विरह हुआ। अब किसको प्रश्न करेंगे और कौन समाधान करेगा? धर्मात्मा को सर्वज्ञ परमात्मा का ऐसा विरह लगता है। भरत चक्रवर्ती जैसे को भी, जब ऋषभेदव प्रभु मोक्ष पधारे, तब ऐसा विरह-वेदन हुआ था।

जन्म-मरण करते-करते सारे विश्व में भ्रमण करते हुए इस जीव को और तो सब सुलभ है परंतु एक यथार्थ ज्ञान ही दुर्लभ है। इस ज्ञान की प्रापित का यह सुअवसर आया है, तब इसकी प्राप्ति, रक्षा व वृद्धि के लिये प्रमाद नहीं करना चाहिये। सबसे दुर्लभ ऐसे अमूल्य बोधि की प्राप्ति का यह अवसर हे जीव! तू मत चूकना; क्योंकि—

'दुर्लभ है संसार में, एक यथारथ ज्ञान'

धर्मी जीव अपनी आत्मा में जैसे सम्यग्दर्शनादि के द्वारा दु:ख दूर करने का उपाय करते हैं, वैसे अन्य जीवों को भी दु:ख न हो, उनका दु:ख मिटे, ऐसी करुणा का भाव उन्हें आता है। जीवदया के बिना सच्चा दान हो नहीं सकता, और धर्म की पात्रता भी नहीं होती।

सच्चा अभयदान तो यह है कि जिससे भव-भ्रमण का भय टले और आत्मा निर्भय होकर सुख के पंथ में लगे। अज्ञान व मिथ्यात्व ही सबसे बड़े दु:ख का-भय का कारण है;

सम्यग्दर्शन व सम्यग्ज्ञान के होने से वह भय मिटता हे और अभय होकर के आत्मा सुख पाता है। इसलिये जीवों को सम्यग्ज्ञान के मार्ग में लगाना, यही बड़ा अभयदान है। और इसी से अरिहंतों को भी अभयदातार (अभय दयाणं) कहने में आता है।

अरिहंत भगवान सर्वज्ञ हैं, और सर्वज्ञता ही जैनधर्म का मूल है। 'सर्वज्ञ' कहने से राग व पराश्रय सब एक ओर रह जाते हैं, क्योंकि जहाँ राग व पराश्रय हो, वहाँ सर्वज्ञता नहीं होती। अतएव राग के ऊपर या पराश्रय के ऊपर दृष्टि रखके सर्वज्ञ की प्रतीति नहीं हो सकती। इसी से कुन्दकुन्दस्वामी ने कहा है कि यदि तुझे सर्वज्ञदेव की परमार्थ स्तुति करनी हो तो तेरे ज्ञायकस्वभाव के सन्मुख हो। जयजिनेन्द्र।

दया कहाँ है ?

"आत्मा का धर्म उत्तमक्षमा और अहिंसा है, वह अहिंसा दया-भाव से उत्पन्न होती है। निर्दय जीव ही परघात करके हिंसा करते हैं, दयालु मनुष्य किसी की हिंसा नहीं करता। दया भावना के कारण ही माँस खाने का, चमड़ा प्रयोग में लाने का, अण्डा खाने का, शराब पीने का, शहद खाने का त्याग किया जाता है। मनुष्य में यदि दया की भावना न हो तो सिंह, चीता, भेड़िया आदि के समान मनुष्य भी समस्त जीवों को मारकर खा जावे।"

यही कारण है कि आज हर मंदिर में, हर पूजा उपासना के स्थान पर और अनेकों सभाओं में दया की महत्ता का वर्णन किया जाता है।

किसी के प्राणों का हनन करना, अथवा अपने स्वार्थ के लिये करवाना या प्राणघात करनेवाले को प्रोत्साहन देनेवाला काम करना; दया-भावना का प्रतीक नहीं है। दूसरे के प्राणों की रक्षा करना या उनका अपने कारण घात न कराना, दयाभावना का पालन करना है। बहुत से व्यक्ति ऐसे हैं जो प्राणियों को कष्ट देना अपना व्यवसाय समझते हैं। कुछ लोग पशु-पक्षियों को

मारने ले जाते हैं। इसके विपरीत ऐसे भी धार्मिक दयालुजन होते हैं जो उन पशु-पक्षियों पर दया करके उन्हें छुड़ा देते हैं।

कई जगह देखा गया है कि दया का सुंदर विवेचन करनेवाले विद्वान और अत्यंत धार्मिक जीवन व्यतीत करनेवाले व्यक्ति, पशुघात के पाप से सर्वथा मुक्त नहीं हैं। माँस खाना त्याग दिया परंतु चमड़ा उपयोग में लाते रहे तो इससे तो जीवदया का पालन नहीं हो सकता। क्योंकि पशु का चमड़ा उतर जाने पर पशु जीवित नहीं रहता है। कोई यह समझे कि चमड़ा उतरवाने में पशु को आनंद मिलता हो तो ऐसी भी बात नहीं है। अगर कोई यह समझता हो कि शरीर के किसी स्थान का चमड़ा पशु के शरीर में फालतू होता है, सो भी बात नहीं है। तात्पर्य यह है कि चर्म-प्रयोग करना भी उतना ही दोषी है जितना माँसाहार। पशु की निगाह में जो व्यक्ति उसका चमड़ा प्रयोग करता है, उसका प्रिय नहीं है।

इस कमजोरी की सारी जड़ यह चर्म प्रयोग है। इसी के कारण आज दयालु होते हुए भी हम दयावान नहीं हैं। अहिंसक होते हुये भी हम अहिंसक नहीं हैं।

पशुवध निरोधक समिति अहिंसक समाज से चर्म प्रयोग का कलंक दूर करने का प्रयास कर रही है। भावना पलटने की देर है, चमड़े की वस्तुओं का बहिष्कार हो सकता है। आप आज ही चमड़े की वस्तुओं को प्रयोग में न लाने की प्रतिज्ञा करके देखें, आपको लगेगा कि छोटे-छोटे पशुओं के बच्चे अपने माता-पिता के प्राणों की भीख आपसे पाकर कितने खुश हैं। चर्म प्रयोग त्याग का प्रतिज्ञा फार्म हमसे मंगाकर भरिये।

विनीत-जिनेन्द्रप्रकाश जैन, बी.ए., एलएल.बी.
संयोजक-पशुवध निरोधक समिति
९७१/३९ ए/९एच धर्मपुरा, गाँधीनगर, दिल्ली-३१

जैन खगोल और विज्ञान का समन्वय

आधुनिक विज्ञानवादी विद्वान यह तो मानता है कि हमने विश्व के विज्ञान में जो उपलब्ध सामग्री की जानकारी प्राप्त की है, वह तो महा सागर के सामने छोटी सीप के टुकड़े ही हैं और हमारी खोज भी परिवर्तनशील है। यूरोपीय विद्वानों और उन्हीं के विधान भारत के प्राचीन खगोल-भूगोल के कथन को उचित मानने में प्रामाणिक आधार देते थे। पृथ्वी फिरती है, सूर्य स्थिर है, ऐसा कथन अर्वाचीन मत का है। पृथ्वी स्थिर है, सूर्य-चंद्रादि फिरते हैं, प्राचीन ग्रंथ तथा जैन सिद्धांत कहते आये हैं।

विश्व अर्थात् छह जाति के समस्त द्रव्यों का समूह —

(१) जीव (आत्मा) अनंतानंत संख्या में हैं।

(२) पुद्गल जीव की संख्या से अनंतानंत गुने हैं।

(३) धर्मास्तिकाय लोकाकाश जितना बड़ा अमूर्तिक एक ही द्रव्य है।

(४) अधर्मास्तिकाय लोकाकाश जितना बड़ा अमूर्तिक एक ही द्रव्य है।

(५) आकाश-जो सर्वत्र क्षेत्र से चौड़ाईरूप अनंत.. अनंत.. अनंत.. अवकाशरूप अमूर्तिक एक ही द्रव्य है, उसके दो विभाग हैं, जिसमें जीवादिक देखे जाते हैं - उस संग्रहात्मक जगत को लोकाकाश कहते हैं, शेष अमर्यादित अनंत-निश्चय अनंत क्षेत्र है, उसे अलोकाकाश कहते हैं (जिसके सामने लोक अणुमात्र है)।

(६) कालाणु, द्रव्य असंख्य है, अमूर्त है। वह सब भी अपनी-अपनी सत्तारूप सदा उत्पाद, व्यय, ध्रुवता सहित ही है। स्वतंत्र अस्तित्वमय पदार्थ है। उसका कोई कर्ता-हर्ता-धर्ता नहीं है। भरतक्षेत्र और ऐरावतक्षेत्र में कर्मभूमि में जहाँ आर्यक्षेत्र है, वहाँ बाह्यरचना में हानि वृद्धि, क्षेत्र, कालानुसार होती रहती है।

जैनदृष्टि से विश्व अनादि-अनंत १४ राजु (असंख्य योजन के एक राजु) प्रमाण है, यह क्षेत्र कभी घटते-बढ़ते नहीं। उनकी आकृति दो पैर चौड़ा करके, और दो हाथ कटि स्थान पर रखकर पूर्व दिशा में खड़ा हुआ पुरुष के समान है। इस १४ राजु लोक में नीचे सात राजु क्षेत्र को अधोलोक, मध्य को तिर्यंच लोक और उस सात राजु के ऊपर के भाग को ऊर्ध्वलोक कहा है। यह तिरछे लोक में ठीक मध्यभाग में एक लाख महायोजन का स्थालीवत् गोलाकार

जम्बूद्वीप है, जम्बूद्वीप के मध्य भाग में एक लाख महायोजन उत्तंग सुमेरु नामक पर्वत है। उस मेरुपर्वत से दक्षिण दिशा में ४९४७४ महा योजन दूर यह भरतक्षेत्र है, यह दृश्यमान भरतक्षेत्र तो बहुत-बहुत छोटा ही है। भरतक्षेत्र के मध्यभाग में वैताढ्य पर्वत है, वहाँ ऊपर महान वैभववंत मनुष्य निवास करते हैं, विमान द्वारा आकाश में गमन करते हैं हजारे बड़े-बड़े नगर हैं। वह पर्वत हजारों मील ऊँचा तथा पूर्व पश्चिम दिशा में १४४७१ महायोजन करीब लम्बा है, इस वैताढ्य पर्वत से दक्षिण दिशा के मध्यबिन्दु से करीब एक लाख ८५ हजार कोस दूर सर्वत्र समुद्रों से वेष्टित द्वीप के समान वर्तमान विश्व है जो आधुनिक विज्ञानी द्वारा जगत माना जाता है है, और उस विश्व की इस पृथ्वी का आकार अर्धवृत्त घुम्मट-आधा लड्डू के समान है, जम्बुद्वीप के चारों ओर चूड़ी आकार दूनी-दूनी परिधि से घेरे हुए असंख्य समुद्र और असंख्य महाद्वीप हैं, उसमें सबके बीच में यह जंबुद्वीप का प्रमाण १ लाख महायोजन है। यह नाप-शास्त्रीय माप द्वारा है - १ योजन के ४५०० मील होते हैं। उसमें भरतक्षेत्र का माप उत्तर दक्षिण ५२६ ६/१९ योजन है-पूर्व पश्चिम १४४७१ योजन है।

दक्षिण भारत के उत्तर सीमांत में वैताढ्य पर्वत है, वैताढ्य पर्वत से दक्षिण बाजु ११४, ११/१९ दूर मध्य बिन्दु है। मध्य बिन्दु पर अयोध्यानगरी है, यह नगरी आज की अयोध्या नहीं किंतु भगवान आदिना-ऋषभदेव ने जब स्वर्गलोक से यहाँ कुलकर मनु नाभिराजा के यहाँ जन्म लिया था, वह अयोध्या है। इस अयोध्या को केन्द्र मानकर खगोल-भूगोल के गणित होते हैं। आज स्टेंडर्ड टायम और लोकल टाइम में जिसप्रकार अंतर है, उसीप्रकार अयोध्यानगरी के अनुलक्षित जिस पृथ्वी पर रह रहे हैं, वहाँ से वह अयोध्यानगरी एक लाख पंचासी (१८५०००) कोस दूर है, पोने तीन मील का एक कोस मानना।

हिन्दुस्तान टाइम्स के अक्टूबर के अंक में एक रशियन वैज्ञानिक ने लिखा है कि हम जिस पृथ्वी पर रह रहे हैं और जानते हैं, उनसे एक कोटि गुनी अधिक जनसंख्या है। ई. सन. १९६५ यूनाइटेड इन्फर्मेशन में भी कितनेक वैज्ञानिकों को सूचित किया था कि हमारे इस ब्रह्मांड जैसा दूसरा ब्रह्मांड का अस्तित्व भी है-जिसमें अरबों लोग निवास करते हैं। अमेरिका के समक्ष सलामती के लिये ऐराड्राम की जगह की पसंदगी करने के लिये रशिया के वैज्ञानिकों ने सर्वे करते उत्तर ध्रुव के प्रदेश में रडार द्वारा देखने पर २५००० (पच्चीस हजार) चौरासी लाख का प्रदेश देखा जहाँ जने के लिये प्रयत्न भी किया किंतु निष्फल हुआ। दक्षिण ध्रुव में आगे जाने का प्रयत्न भी कई वर्ष पूर्व हो चुका जो निष्फल हुआ।

रूस में एक वैज्ञानिक ने अपनी मृत्यु वसीयत में लिखा था कि मेरा शव दूर-दूर उत्तर ध्रुव में गाडना, पश्चात् सबमेरीन के द्वारा दूर-दूर जाकर ऊपर आने पर देखा तो उत्तर दिशा में समुद्र के आगे असीम बड़ा-बड़ा जंगल है, शव तो बर्फीले समुद्र में गाड़कर चले आये। अत: उत्तर ध्रुव की सीमा लाखों मील है, पृथ्वी वर्तमान दृश्यमान जगत के अर्थ में आधे लड्डू के समान है जिसमें खड्डे भी हैं, उन्नत प्रदेश भी हैं और जम्बुद्वीप का आकार स्थालीरूप में है।

आधे लड्डू के समान तो भरतक्षेत्र का आर्यखण्ड ही है, पश्चात् लाखों मील पृथ्वी फैली हुई है। उसमें क्रमश: बहुत लम्बे-चौड़े पर्वत भी हैं।

विश्व में मध्यलोक, उसमें जम्बूद्वीप, उसमें ठीक मध्यभाग में मेरुपर्वत है, जो नीचे दस हजार महायोजन चौड़ा है, भूतल में एक हजार योजन-और ऊँचाई में ९९ हजार योजन है। वहाँ तक मध्यलोक है, मेरुपर्वत से चारों ओर दस हजार योजन छोड़कर ज्योतिषी मंडल उनकी प्रदक्षिणारूप गमन कर रहे हैं, नीचे पृथ्वी के समतल से ७९० योजन ऊँचे स्थान पर ताराओं के मंडल आते हैं। वहाँ से १० योजन ऊपर सूर्य, सूर्य से ८० योजन ऊपर चंद्र, पश्चात् ४ योजन ऊपर बुध, ३ योजन पर शुक्र, ३ योजन पर गुरु, ३ योजन पर मंगल और उनसे ३ योजन पर शनि आता है। सूर्य और चंद्र जम्बूद्वीप में दो-दो हैं, इन सूर्य और चंद्र का परिभ्रमण दिवस और रात्रि, शीत-उष्णता-दिनमान का घटने-बढ़ने में कारण है। सूर्य और चंद्र विमान के नीचे नित्य राहु और पर्व राहु नामक दो-दो विमान साथ-साथ घूमते रहते हैं, उनसे चंद्रमा की कला में हीनता अधिकता देखी जाती है, पर्व राहु द्वारा सूर्य या चंद्र में ग्रहण का दृश्य बनता है।

खगोल भूगोल के विषय में विशेष जानना हो तो करीब दो हजार वर्ष के प्राचीन जैन महर्षि द्वारा लिखित-तियोयपण्णत्ति भाग १, २, लोक विभाग, त्रिलोकसागर, तत्त्वार्थसूत्र की टीका सर्वार्थसिद्धि, तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक नामक बहुत बड़ी टीका, कर्ता श्री विद्यानंदस्वामी, यहाँ से देखकर अभ्यास करें। पृथ्वी गोलगेंद समान नहीं है, घूमती नहीं है, उसके बारे में आधार सहित लिखना है, अवकाश मिलते ही लिखेंगे।

—संग्राहक ब्रह्मचारी गुलाबचन्द जैन

(इस लेख में गुजरात समाचार का कुछ आधार लिया है।)

मोक्षमार्ग दो नहीं हैं और न हो सकते है

(लेखक - श्री रामजी माणिकचंद देशी)

यहाँ पर आचार्यदेव ने उपर्युक्त तीनों कारणों से 'दो मोक्षमार्ग नहीं हैं किन्तु शुद्धध्यानादि एक ही मोक्षमार्ग है' यह स्थापित किया है।

५- श्री समयसार, गाथा १६१-१६३ में श्री जयसेनाचार्य निम्न प्रकार कहते हैं:—

''(१) इति सम्यक्त्वादि जीवगुणा मुक्तिकारणं तद्गुणपरिणतो वा जीवो मुक्तिकारणं भवति, (२) तस्माच्छुद्धजीवाद्भिन्नं शुभाशुभमनोवचनकायव्यापाररूपं, तद्व्यापारेणोपार्जितं वा शुभाशुभ कर्म मोक्षकारणं न भवतीति मत्वा हेयं त्याज्यमिति व्याख्यानमुख्यत्वेन गाथानवकं गतं ॥१६१, १६२, १६३॥'' **अर्थ**—(१) इसप्रकार सम्यक्त्व आदि जीवगुण मुक्ति के कारण हैं तथा उन गुणरूप परिणत जीव मुक्ति का कारण होता है। (२) इसकारण शुद्धजीव से भिन्न शुभाशुभ मन-वचन-काय के व्यापाररूप तथा उस व्यापार से उपार्जित शुभाशुभ कर्म मुक्ति का कारण नहीं होता, ऐसा मानकर वह शुभाशुभ कर्म हेय-त्याज्य है। इसप्रकार मुख्यपने से व्याख्यान करनेवाली नौ गाथायें (गाथा १५५-१६३) पूर्ण हुईं ॥१६१-१६२-१६३॥

श्री जयसेनाचार्य के उक्त कथन पर से निम्न फलितार्थ प्रगट होते हैं—(१) मुनिराज का महाव्रत, श्रावक के देशव्रतादिकभाव (अ) प्रमादजनित होने से (ब) तथा उसमें पररूप मन-वचन-काय का आश्रय होने से वे शुद्धात्मा के आश्रय से नहीं होते। अतः वे भाव शुद्धात्मा से भिन्न हैं, इसलिये वे मोक्ष के कारण नहीं हैं। यही कारण है कि प्रमाद का अभाव करके मुनि हजारों बार सप्तम गुणस्थान (अप्रमत्तसंयत) में जाते हैं।

(देखो, श्री प्रवचनसार गाथा ४-५ में दोनों आचार्यों की टीका)

(२) सम्यक्त्वादि जीवगुण वा उन गुणरूप परिणत जीव मोक्ष का कारण है।

(३) मोक्षमार्ग दो नहीं, एक है।

(४) ऊपर (१) में कहा हुआ 'व्यवहार मोक्षमार्ग' तो 'निश्चय मोक्षमार्ग' का निमित्तरूप बहिरंग सहकारी कारण है। (देखो, श्री समयसार, गाथा १५४, श्री जयसेनाचार्यकृत टीका, पृश्ठ २२५, तथा श्री परमात्मप्रकाश, अध्याय १, गाथा ९८ की टीका, पृष्ठ ९३)

(५) समस्त सम्यग्दृष्टि जीवों की श्रद्धा में पुण्य हेय है, तो भी हेयबुद्धि से, अनीहित वृत्ति से-अतन्मयपने से महाव्रत, देशव्रत तथा अन्य पुण्यभाव होते हैं।

(६) किस कारण से वे पुण्यभाव होते हें ? इस विषय में निम्न आगमाधार पढ़िये।

(१) श्री द्रव्यसंग्रह, गाथा ३८, टीका, पृष्ठ १५८-१५९

(२) श्री परमात्मप्रकाश, गाथा ९१, पृष्ठ १८३

(३) श्री पंचास्तिकाय, गाथा १३६-१३८ की टीका, श्री अमृतचंद्राचार्य की।

(४) इन्हीं गाथाओं की टीका श्री जयसेनाचार्य की।

(५) सम्यग्दृष्टि जीव पुण्य को निश्चयनय से 'पाप' मानते हैं, तो भी अपनी भूमिकानुसार कमजोरी से पुण्यभाव आता ही है। (देखो श्री जयसेनाचार्यकृत 'पुण्यपाप अधिकार' टीका, पृष्ठ २३४, तथा श्री योगसार, गाथा ७१)

(६) अज्ञानी जीव पुण्य को 'उपादेय' मानते हैं, वास्तव में वह 'हेय' है। (देखो श्री समयसार, गाथा १५०, टीका, पृष्ठ २१५)

(७) जहाँ 'शुभ द्रव्यकर्म' को हेय कहा है, वहाँ 'शुभकर्म' और उसका कारणरूप 'पुण्यभाव' दोनों को हेय समझना चाहिये। (देखो, श्री समयसार, गाथा १६१-१६३ की टीका, पृष्ठ २६३-२६४, श्री जयसेनाचार्य)

(८) श्री पंचास्तिकाय, गाथा १३१, पृष्ठ ३१५ श्री जयसेनाचार्य।

(९) श्री पंचास्तिकाय, गाथा १३२, पृष्ठ ३१७ श्री जयसेनाचार्य। यहाँ मूलगाथा में 'पोग्गलमेत्तो भावो=पुद्गलमात्रो भावः' कहकर उसमें लेशमात्र शुद्धि नहीं है, यह बताया है।

(१०) मोक्षार्थी जीवों को 'पुण्य-पाप दोनों श्रद्धा में त्याज्य मानना चाहिये' ऐसा निम्न कलश में कहा है:— **कलश १०९:**

संन्यस्तव्यमिदं समस्तमपि तत्कर्मैव मोक्षार्थिना
संन्यस्ते सति तत्र का किल कथा पुण्यस्य पापस्य वा।
सम्यक्त्वादिनिजस्वभावभवनान्मोक्षस्य हेतुर्भवन्
नैष्कर्म्यप्रतिबद्धमुद्धतरसं ज्ञानं स्वयं धावति॥१०९॥

अर्थ:—मोक्षार्थी जीव के द्वारा वही कर्म जो पहले ही कहा था जितना शुभ क्रियारूप, अशुभ क्रियारूप, अन्तर्जल्परूप, बहिर्जल्परूप इत्यादि करतूतिरूप क्रिया, अथवा

ज्ञानावरणादि पुद्गल का पिंड, अशुद्ध रागादिरूप जीव के परिणाम, ऐसा कर्म 'जीवस्वरूप का घातक है' ऐसास जानकर आमूलचूल त्याज्य है। उस समस्त ही कर्म का त्याग होने पर पुण्य का पाप का कौन भेद रहा? कुछ भी भेद नहीं रहा, ऐसा निश्चय से जानो। 'ज्ञान' अर्थात् आत्मा का शुद्ध चेतनारूप परिणमन मोक्ष का कारण होता हुआ स्वयं दौड़ता है। ज्ञान निर्विकल्पस्वरूप और प्रगटरूप से चैतन्यस्वरूप है। सम्यक्त्वादि अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र ऐसे हैं, जो जीव के निजस्वभाव हैं।

यहाँ कोई आशंका करेगा कि मोक्षमार्ग सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र इन तीन का मिला हुआ है, यहाँ ज्ञानमात्र मोक्षमार्ग कहा, सो क्यों कहा? उसका समाधान ऐसा है—शुद्धस्वरूप ज्ञान में सम्यग्दर्शन-सम्यक्चारित्र सहज ही गर्भित हैं, इसलिये दोष तो कुछ नहीं, गुण हैं॥१०-१०९॥ (कलश टीका, पृष्ठ ९०-९१)

७— पुण्यसंबंधी अज्ञानी बहिरात्मा की श्रद्धा कैसी होती है और ज्ञानी अंतरात्मा की श्रद्धा कैसी होती है और वह अंतरात्मा अंत में परमात्मा (श्रीजिन) होकर किसप्रकार मोक्ष पधारती है, यह सुंदर वर्णन श्री महावीरजी से प्रसिद्ध 'श्री परमाध्यात्म तरंगिणी' में (पृष्ठ ७८) 'पुण्य-पाप अधिकार' के अंतिम मंगलरूप एक हिन्दी कवित्त में दिया है। वह निम्न प्रकार है:—

आश्रय कारण रूप सवादसुं
भेद विचारि गिने दोउ न्यारे।
पुण्य रु पाप शुभाशुभ भावनि
बंध भये सुख दुःख करारे।
ज्ञान भये दोउ एक लखै बुध
आश्रय आदि समान विचारे।
बंध के कारण हैं दोउरूप
इन्हें तजि श्रीजिन मोक्ष पधारे।

अर्थ—अज्ञानी बहिरात्मा 'शुभ-अशुभभाव दोनों भिन्न हैं।' उनसे पुण्य-पाप का बंध होता है और पुण्य का फल मंद आकुलतारूप सुख और पाप का फल तीव्र आकुलतारूप दुःख मिलता है, ऐसा आश्रय, कारण, स्वभाव और स्वाद (अनुभव) के भेद से शुभ-अशुभभाव

दोनों को भिन्न-भिन्न गिनता है। ज्ञान होने पर शुभ-अशुभभाव और तज्जन्य पुण्य-पाप बन्ध को बुध (ज्ञानी अंतरात्मा) एक समझता है और उसके आश्रय, कारण, स्वभाव और अनुभव को, चारों को समान विचारता है। **दोनों को बंध का कारण होने से त्याज्य समझकर** वह श्रीजिन होकर मोक्ष को पधारता है।

जिनको अज्ञानी बना रहना है, वह 'अमुक शुभकार्य मोक्ष का कारण है' ऐसी अपनी श्रद्धा बनाये रखता है। 'शुभभाव धर्म के लिये अच्छा है और अशुभभाव बुरा' ऐसी अज्ञानरूप श्रद्धा का अभाव करके अज्ञानी, ज्ञानी (बुध) बनते हैं। वे धर्म के लिये दोनों को ही 'हेय' तथा 'बन्ध का कारण' समझते हैं। और स्वयं के लिये स्वसन्मुखता के पुरुषार्थ की वृद्धि करते हैं और उसके फलस्वरूप केवली तथा सिद्ध भगवान होकर मोक्ष में पधारते हैं।

८— आगे श्री पंचास्तिकाय की गाथा १३१, १३२, १३५, १३६ और १३७ का प्रमाण देकर यह बताया है कि (१) जीव के शुभभाव और अशुभभाव दोनों ही हेय हैं। (२) द्रव्यकर्म और उसमें निमित्त होनेवाले शुभ अशुभरूप परिणाम हेय हैं। उनकी 'उपादेय' रूप से श्रद्धा करने को अरहंत मत के सर्वथा विरुद्ध माना है। अब क्रमशः प्रमाण देखिये:—

(१) श्री पंचास्तिकाय की गाथा १३१ की जिसमें पुण्य-पाप के योग्य भावों का स्वभाव क्या है, बताया है-संस्कृत टीका में श्री जयसेनाचार्य निम्नप्रकार पृष्ठ ३१५ में कहते हैं:—

"अथ शुद्धबुद्धैकस्वभावशुद्धात्मनः सकाशाद्भिन्नस्य हेयस्वरूपस्य द्रव्यभावपुण्य-पापद्वयस्य व्याख्यानमुख्यत्वेन 'सुहपरिणामो' इत्यादि (गाथा १३२) सूत्रमेकम्।"

अर्थः—'अब शुद्ध बुद्ध एकस्वभाव शुद्धात्मा से भिन्न, हेयस्वरूप द्रव्य-भावरूप पुण्य-पाप दोनों के व्याख्यान की मुख्यतावाला 'सुहपरिणामो' इत्यादि सूत्र (गाथा १३२) एक है।'

२- श्री पंचास्तिकाय की गाथा १३२ की टीका के अंत में भी उपर्युक्त प्रकार से ही पृष्ठ ३१७ में कहा है, इसलिये यहाँ उसके अवतरण देने की जरूरत नहीं है।

३- श्री पंचास्तिकाय की गाथा १३५ में पुण्यास्रव के स्वरूप का आख्यान करते हैं। उसकी टीका में श्री जयसेनाचार्य पृष्ठ ३२२-३२३ में कहते हैं:—'अथ निरास्रवशुद्धात्म-पदार्थात्प्रतिपक्षभूतं शुभास्रवमाख्याति।' अर्थः—अब निरास्रव शुद्धात्मपदार्थ से प्रतिपक्षभूत शुभास्रव का वर्णन करते हैं।

''विशेषार्थ—वीतराग परमात्मद्रव्य से विलक्षण अरहन्त-सिद्ध आदि परमेष्ठियों में पूर्ण गुणानुराग, सो 'प्रशस्त धर्मानुराग' है। दयासहित मन, वचन, काय का व्यापार, सो 'अनुकम्पा के आश्रय परिणमन' है। क्रोधादि कषाय को 'कलुषता' कहते हैं। जिस जीव के भावों में धर्म प्रेम है व दया है तथा कषाय की तीव्रता का मैल नहीं है, उस जीव के इन शुभ परिणामों से 'द्रव्य पुण्य कर्म' के आस्रव में कारणभूत 'भावपुण्य' का आस्रव होता है। यहाँ सूत्र में 'भावपुण्यास्रव' का स्वरूप कहा है। १३५॥

इसतरह 'शुभ आस्रव' को कहते हुए गाथा पूर्ण हुई।''

४- श्री पंचास्तिकाय गाथा १३६ में कहा है कि पंचपरमेष्ठी की भक्ति अज्ञानी और ज्ञानी दोनों को होती है। अज्ञानी तो श्रद्धा में उसे 'उपादेय' मानते हैं, इसलिए उसे करते हैं, किन्तु ज्ञानी ही श्रद्धा में वह 'हेय' है, तो भी वह (पंच परमेष्ठी की भक्ति) उसको किसकारण से होती है, यह गाथा १३६ की टीका में बताया है। वह निम्नप्रकार है:—

''यह (प्रशस्तराग) जो स्थूल दृष्टि से मात्र भक्तिप्रधान है, ऐसे अज्ञानी को होता है, उच्च भूमिका में (ऊपर के गुणस्थानों में) स्थिति-स्थिरता प्राप्त न की हो तब, अस्थान का राग रोकने के हेतु अथवा शीघ्र राग ज्वर मिटाने के हेतु, कदाचित् ज्ञानी को भी होता है॥१३६॥''

यहाँ पर यह याद रखने की बात है कि ज्ञानी का 'व्यवहार धर्म' इस आस्रव की गाथा में 'धम्म' शब्द से समाविष्ट किया है। व्यवहारधर्म आस्रवतत्त्व है।

इसप्रकार ज्ञानी को हेयबुद्धि से 'भक्ति का रागरूप शुभास्रव' होता है। वह निश्चय से उसमें और 'पाप' में फर्क नहीं समझता, दोनों को समान समझता है। जो समान न समझे तो घोर संसार में रुलता है। परमार्थ से पुण्य-पाप का द्वैत नहीं टिकता, क्योंकि दोनों में 'बन्धहेतुत्व' और 'अनात्म-धर्मत्व' अविशेष (समान) है। 'सम्यग्दृष्टि को तो शुभ से आंशिक आत्मधर्म होता है' ऐसा मानना शुद्धोपयोग शक्ति का तिरस्कार है और अनंत घोर संसारपर्यंत दुःख का ही अनुभव है। (देखो श्री प्रवचनसार गाथा ७७ और उसकी टीका, पृष्ठ १०७-१०८; तिलोयपण्णत्ति, भाग २, पृष्ठ ८७९, (गाथा ५६)

जो अनात्मधर्म है, वह सच्चा मोक्षमार्ग कैसे हो सकता है? इसलिये मोक्षमार्ग दो नहीं हैं।

५. श्री पंचास्तिकाय गाथा १३७ में कहा है कि अज्ञानी और ज्ञानी दोनों को ये आस्रव

होते हैं। उसका कारण निम्न शब्दों में श्री अमृतचंद्राचार्य कहते हैं:—

"किसी तृषादि दु:ख से पीड़ित प्राणी को देखकर करुणा के कारण उसका प्रतिकार (उपाय) करने की इच्छा से चित्त में आकुलता होना, वह अज्ञानी की अनुकंपा है। ज्ञानी की अनुकंपा तो, निचली भूमिका में विहरते हुए (स्वयं निचले गुणस्थानों में वर्तता हो तब), जन्मार्णव में निमग्न जगत् के अवलोकन से (अर्थात् संसार सागर में डूब हुए जगत को देखने से) मन में किंचित् खेद होना वह है ॥१३७॥ क्रमश:

मोही प्राणी

[प्रेषक—महेन्द्र जैन 'प्रेम', आगरा, आयु-१६ वर्ष]

वज्रदंत चक्रवर्ती को माली प्रतिदिन प्रात:काल ही कमल का फूल लाकर देता था। एक दिन चक्रवर्ती को उस कमल के फूल में एक भौंरा मरा हुआ दिखा! चक्रवर्ती ने सोचा-'यह भौंरा चाहता तो सायंकाल कमल के बंद होते समय निकलकर भाग सकता था, किंतु मूर्ख, सुगंधि में इतना मस्त हो जाता है कि उसे छोड़ ही नहीं सकता, और उसमें बंद होकर अपने प्राण गंवा देता है। इसीप्रकार यह मानव भी इन्द्रिय विषयों में इतना मस्त हो जाता है कि काल के गाल में समा जाता है, किन्तु अपने आत्महित को देखता ही नहीं है। और मैं भी उन्हीं मूर्खों में से हूँ।' यह सोचकर उसी समय चक्रवर्ती को संसार से वैराग्य हो जाता है और सारा ऐश्वर्य छोड़ अपनी आत्मा की खोज में जंगल के एकांत में चल देता है। *(सन्मति संदेश में से)*

धर्मयुग प्रवर्तक श्री कानजी स्वामी द्वारा अपूर्व प्रभावना

पंच कल्याणक महा महोत्सव

मोटा आंकड़िया (सौराष्ट्र) जैनधर्म की वृद्धि, सन्मार्ग प्रभावना कैसे बढ़ रही है ? पूज्य स्वामीजी के उपदेश से प्रभावित श्री जमुभाई रवाणीजी द्वारा इस 'आत्मधर्म' पत्र का जन्म आंकडिया शहर में हुआ था, तारीख ३-२-६७ जिनेन्द्र पंच कल्याणक प्रतिष्ठा उत्सव निमित्त पूज्य कानजीस्वामी पधारते समय आसपास गाँवों से हजारों धर्म जिज्ञासु एकत्र हो चुके थे, अति उल्लासपूर्ण स्वागत हुआ। हाथी, घोड़े और वादित्रों सहित सारा गाँव प्रमुदित हो रहा था, जिनमंदिर सन्मुख विशाल प्रतिष्ठा मंडप, विशेष शोभित हो रहा था, स्वामीजी ने सबको अर्थ सहित मांगलिक सुनाया। पश्चात् झंडरोपण, जाप्यविधि, पंच परमेष्ठी पूजा का मंडल विधान प्रतिष्ठाचार्य श्री नाथूलालजी शास्त्री द्वारा शुरु हुआ, पश्चात् जिनेन्द्र अभिषेक विधि, अंकुरारोपण-जलयात्रा जुलूस।

ग्राम्य जनता और आंकडिया के समस्त किसान समाज को जो धनाढ्य है; यह उत्सव मानों हमारा ही है, इसप्रकार परम उमंग से भाग लेते थे। उन्हीं के द्वारा भी मंगल गीतों से मंडप गूंजता था। रात्रि को हमेशा जैनेतर समाज के मशहूर कलाकारों की बड़ी-बड़ी टोली जैनधर्म का माहात्म्य दर्शानेवाले भजनों द्वारा नृत्य, भक्ति, रास और संगीतमय भजनों के कार्यक्रम द्वारा अपनी भक्ति और उमंग व्यक्त करती थी, देहली में स्वातंत्र दिन उत्सव पर राष्ट्रपति द्वारा जिस रास मंडली को इनाम मिला था, वह कुंकापाव भजन मंडली तथा स्थानीय मंडली में बड़ी प्रेम भरी स्पर्धा चलती थी। दो दिन तो सोनगढ़ मानस्तंभ पंच कल्याणक प्रसंग की ऐतिहासिक बड़ी फिल्म दिखाई थी। पंडितजी नाथुलालजी शास्त्री प्रतिष्ठाचार्य यह सब परम भक्ति और जैनेतर बंधु द्वारा अपार प्रेम देखकर बारबार भारी प्रमोद व्यक्त करते थे।

तारीख ५ प्रतिष्ठा उत्सव का प्रारंभ, नांदिविधान ८ इन्दों की प्रतिष्ठा और पवित्र प्रभावोत्पादक जुलूस देखकर ग्राम्य जनता आनंदित होती थी। यागमंडल विधान पूजा, गर्भकल्याणक के पूर्व दृश्य, गर्भ तथा जन्मकल्याणक के समय पूज्य कानजीस्वामी सबको समझाते थे कि-देखो... भगवान के साक्षात् कल्याणक होते होंगे, तब वह दृश्य कैसा होता होगा ! उनकी महिमा की क्या बात ? यह सर्व वीतरागी विज्ञान की महिमा है।

हजारों जैनेतर भाइयों को स्वामीजी प्रति ऐसा जादूमय आकर्षण हो चुका था कि सबके सब बड़ी संख्या में ठीक समय पर प्रवचन में उपस्थित रहते थे, और अति एकाग्रता, प्रसन्नता से सुनते थे। सर्वज्ञ वीतराग कथित तत्त्व अपूर्व है, कभी सुना ही नहीं। जन्म-मरण का अंत और सत्यसुख, ऐसी श्रद्धा करने से मिलेगा, ऐसा बारंबार सुनकर श्रोताजन अपनी परम प्रसन्नता प्रगट करते थे जो देखते ही बनती थी। जन्मकल्याणक समय बड़ा मेला लगा था। दीक्षा कल्याणक में वैराग्यमय उपदेश द्वारा जनता गद्‌गद् होती थी। ज्ञानकलयाणक पश्चात् निर्वाण कल्याणक मनाया, गिरनारजी की रचना थी। जिनेन्द्र कल्याणक के ऐसा अपूर्व भावभीगे दृश्यों को देखकर सब लोग बड़ी प्रसन्नता पा रहे थे। स्व० बालुभाई ने, जो श्वेताम्बरी साधुमार्गी थे स्वामीजी के परिचय में आने बाद यहाँ जिनमंदिर की भावना की थी, उनके सब बंधुजन उस कार्य को सम्पन्न करने आये थे। वे बड़ा भारी प्रमोद व्यक्त कर रहे थे कि गुरुदेव! यह तो बड़ा भारी सरस अपूर्व दृश्य है, हृदय को हिला देनेवाले मंगल अवसर आपने ही दिखाये हैं। अनेक विध कल्याणक के दृश्य, उनकी समझ और जिनेन्द्रदेव की महिमा का अवलोकन, हमने तो कभी नहीं किया था... 'आंकड़िया' के आंगन में ऐसा महोत्सव... यह तो गुरुदेव! आपका ही महान पुण्य प्रताप है। पंडित श्री नाथुलालजी शास्त्री संहितासूरि जो प्रतिष्ठाचार्य के सुलक्षणों से सम्पन्न, निस्पृह महान आत्मा हैं, आप हरेक विधि समझा-समझाकर शांतिपूर्वक व्यवस्थित ढंग से कराते थे, इससे विशेष आनंद होता था। विधिनायक श्री नेमिनाथ भगवान थे।

दीक्षा कल्याणक विधि के पूर्व, प्रभु के वैराग्य का दृश्य, राजीमती की भावना, लौकांतिक देवों द्वारा स्तुति, संबोधनपूर्वक वैराग्य की अनुमोदना, पश्चात् जब पालकी में विराजमान प्रभुजी गिरनार की ओर जा रहे थे (गिरनार पहाड़ यहाँ से नजदीक है) तब सारे गाँव की जनता प्रभु के साथ वन में जा रही थी, वन में दीक्षा कल्याणक की विधि, पूजन, दीक्षा के बाद प्रभु तो आत्मध्यान में लीन हुए... पश्चात् स्वामीजी ने मुनिदशा निर्ग्रंथ ही होती है, उसका स्वरूप विस्तार से समझाया। प्रवचन में मुनिदशा की भावना को बारंबार महिमा लाकर उस पर भक्तिभाव दिखा रहे थे, और वैराग्यरस का प्रवाह बहा रहे थे।

मुनि अतीन्द्रिय आनंद के अनुभव में झूलते होते हैं। निर्मल भेदविज्ञान की प्रवीणता से प्राप्त, देहादि, द्रव्य इन्द्रिय, भावेन्द्रिय और उनके विषयों को जीत, नित्य अनीन्द्रिय ज्ञानानंद -स्वरूप का भान; देह से भिन्न आनंदस्वरूप का भान तो भगवान को तो प्रथम से ही था; तीन

ज्ञान सहित तो आपने जन्म लिया था, आप मुनि हुए, आत्मानंद में एकदम लीन हुए, तब मन:पर्यय नामक चतुर्थ ज्ञान प्रगट होता है। अहो, अपूर्व अवसर एवो क्यारे आवशे ?.... (काव्य सुनते ही सारी सभा वैराग्यरस से झूमने लगी थी।)

हमारी आत्मा तो छहों द्रव्यों से, जगत से भिन्न वीतरागविज्ञानघन है, हमारा बड़प्पन तो वीतरागभाव में ही है–राग में हमारी हीनता है – ऐसा समझकर चैतन्य के ध्यान में लीन होकर क्षपकश्रेणी द्वारा भगवान ने केवलज्ञान प्रगट किया, मोक्षदशा–सिद्ध परमात्मपद भी वहाँ से पाये थे। दीक्षा कल्याणक के पश्चात् भक्तगण नेमि मुनिराज की भक्ति करते थे।

साक्षात् क्षेत्रमंगल अपेक्षा नेमिप्रभु का दीक्षाधाम–केवलधाम और मोक्षधाम (गिरनारजी) इस गाँव से २२ मील पर है, स्पष्ट दिखता है, उसका दर्शन करते समय वीतरागता की परम महिमा लाकर – ऐसा होता था कि वाह ! धन्य ! नेमिप्रभु का जीवन ! और धन्य यह पावन भूमि ! कल्याणक क्षेत्र मंगल अपेक्षा हमारे वंद्य है। भगवान के आहारदान विधि का प्रसंग बहुत भक्ति भरा था, कई विधि तो पूज्य कानजीस्वामी स्वयं करते थे। स्वामीजी ने

दोपहर को बिम्बों पर अंकन्यास विधि की, अर्थात् मंत्राक्षर अंकित किये। आंकडिया में मूल प्रतिमाजी श्री सीमंधर भगवान, तथा आसपास वेदी में ऋषभदेव भगवान तथा महावीर भगवान के जिनबिंब हैं, धातु के श्री नेमिनाथ प्रभु हैं, शांतिनाथ प्रभु की 'महावैराग्य परिणाम ठहरात है' ऐसी मनोज्ञ मूर्ति तो पहले से ही गाँव में पंडित श्री परमेष्ठीदासजी न्यायतीर्थ द्वारा लायी हुई थी। जो जिनमंदिर के ऊपर के मंजिल की वेदी में विराजमान की है, उपरांत अमरेली शहर में जिनमंदिर होनेवाला है, उनके लिये बड़ी मूर्ति श्री शांतिनाथ भगवान की तथा एक सीमंधर प्रभु की प्रतिमाजी भी स्वामीजी के शुभ हाथ से प्रतिष्ठित हुई। जिनेन्द्रों की अंकन्यास विधि प्रतिष्ठा होते समय सभी को बहुत हर्ष हुआ, पश्चात् भगवान के केवलज्ञान की महिमा सूचक घंटानाद होने लगे, इन्द्रों ने केवलज्ञान का महोत्सव मनाया, समवसरण की रचना हुई, पूजन हुआ, दिव्यध्वनि में भगवान ने क्या कहा? वह बात स्वामीजी ने प्रवचन में विस्तार करके समझाई। हमेशा स्वामीजी के दोनों प्रवचन होते थे। चार पाँच हजार श्रोताओं से सभा मंडप भर जाता था, आसपास के देहातों में से लोग इस अभूतपूर्व उत्सव देखने तथा श्री कानजीस्वामी को देखने-सुनने के लिये बड़ी संख्या में आते रहते थे, अनंदसहित उत्सव में भाग लेते थे, इतना ही नहीं, नवयुवक किसान जो बड़े होशियार और कुशल कलाकार थे, उनकी मंडलियों के मुख से जिनवाणी की महिमा भक्ति के गीत गवाते थे उनका प्रेम, शौर्यमय नृत्य गान, भावावेश देखते ही बनता था, बारंबार आश्चर्य सहित सब कहते थे कि हमारे गाँव में ऐसा अवसर कहाँ से?

महा सुदी १ सवेरे गिरनार तीर्थ में भगवान नेमिनाथ तीर्थंकर मोक्ष पाते हैं, वह दृश्य था, निर्वाण पूजा की; सारा ग्राम एकत्र हो गया था। प्रतिष्ठित जिनेन्द्र भगवंतों को जिन मंदिर में बड़ी भक्ति, उत्साह, जय जयकार सहित विराजमान किये। स्व० बालुभाई की भावनानुसार; उनकी धर्मपत्नी कसुंबा बहिन ने दो मंजिलवाला सुंदर जिनमंदिर बनवा दिया, उत्साही-विवेकवान कार्यकर्ता श्री जमुभाई रवाणी की देखभाल सहित सभी व्यवस्था सुंदर हुई, ग्रामवालों ने संपूर्ण सहयोग दिया, पूज्य कानजीस्वामी के सुहस्त से इस मंदिर का शिलान्यास हुआ था और आज जिनबिम्बों की स्थापना हुई, सबको बहुत हर्ष हुआ। अब अमरेली बड़ा शहर है, यहाँ भी जिनमंदिर शीघ्र हो, ऐसी भावना भक्तगण भाने लगे। श्री स्वामीजी के सुहस्त से जिनवाणी माता की भी स्थापना हुई, पश्चात् मंदिर के शिखर पर कलश-ध्वज चढ़ाये गये। मंगल प्रतिष्ठा आनंदपूर्वक पूर्ण हुआ, वे जिनेन्द्र भगवंत जगत का कल्याण करें...।

इस गाँव में महोत्सव पूर्ण करके प्रस्थान करने के पूर्व श्री कानजीस्वामी ने एक 'गारुड़ी' का स्वप्न देखा:—'एक गारुड़ी है, उसके पास कोई ऐसी वनस्पति है जो सुंघाने पर सर्प बिल में से बाहर आते हैं और जहर का त्याग करके चले जाते हैं; किस बिल में सर्प है, उस स्थान को जानकर वहाँ वनस्पति जड़ी-बूटी सुंघाते ही सर्प बाहर निकलते हैं और अपने जहर का वमन कर देते है'—इसप्रकार मानों देखनेमात्र से मिथ्यात्व के जहर का वमन करनेवाली कोई दिव्य संजीवनी (जिनवाणीरूपी संजीवनी) दिखाई दी। स्वामीजी ने माघ सुदी २ सवेरे आंकडिया में जिनमंदिर में सीमंधर प्रभु के दर्शन करके उनके सन्मुख यह शुभस्वप्न सबको सुनाया। धर्म प्रभावना सूचक ऐसा स्वप्न सुनकर सभी को प्रसन्नता हुई। पश्चात् स्वामीजी ने भगवान की भक्ति कराई, ''सच्चे अंतर्यामी आतम दिल में ध्याइये रे... निज अंतर में प्रभु को प्रेम सहित पधराइये रे...'' ऐसा भावभीना भजन गुरुदेव कानजीस्वामी के श्री मुख से सुनने से उल्लासभाव जागृत होता था। पश्चात् स्वामीजी ने श्री जी भगवान को पूजन-अर्घ चढ़ाकर मंगलपूर्वक प्रस्थान किया। बीच में अमरेली, उमराला-बरवाला होकर राणपुर पहुँचे, वहाँ भक्तों ने भावभीना स्वागत किया, यहाँ विशाल जिनमंदिर और स्वाध्याय मंदिर है, जिनमंदिर में दर्शन किये। राणपुर में बाहर गाँव से करीब ४०० श्रोताजनों ने आकर प्रवचन का लाभ लिया, दूसरे दिन अहमदाबाद होकर हिम्मतनगर पंच कल्याणक जिनबिम्ब प्रतिष्ठा महोत्सव हेतु प्रयाण किया।

लेखक-ब्रह्मचारी हरिलाल जैन
ब्रह्मचारी गुलाबचंद जैन

सत्यार्थ धर्म प्रभावनादर्शक पंच कल्याणक जिनबिम्ब

प्रतिष्ठ महोत्सव

हिम्मतनगर—महावीरनगर सोसायटी (यहाँ गाँव से जरा दूर १०० घर रह सकें) ऐसी सुंदर ब्लोक पद्धति से निवास स्थान बने हैं और दो मंजिलवाला विशाल जैन मंदिर डेढ़ लाख की लागत का बना है। यहाँ तारीख १३-२-६७ से २०-२-६७ महासुदी ३ से १० तक जिनेन्द्र पंच कल्याणक बिम्ब प्रतिष्ठा महोत्सव सब साधर्मियों के सहयोग से संपन्न हुआ। फतेपुर गुजरात निवासी श्री बाबूभाई के नेतृत्व में १२ मास से जिनेन्द्र महिमा उत्सव की तैयारी चल रही थी। श्री बाबूभाई ने अपार धर्म प्रेम-उत्साह से रात-दिन एक करके तथा अनेक उत्साही साधर्मियों के पूर्ण सहयोग से यह ऐतिहासिक मंगल महोत्सव हुआ।

तारीख १३-२-६७ को परमोपकारी पूज्य कानजीस्वामी का भव्य स्वागत, मांगलिक प्रवचन हुआ, प्रवचन में पद्मनंदी पंचविंशतिका में से ऋषभजिनस्तोत्र तथा समयसारजी शास्त्र में से संवर अधिकार पर विशाल सभा में प्रवचन हुए।

उत्सव में प्रतिष्ठाचार्य श्री पंडित नाथूलालजी शास्त्री संहितासूरि द्वारा इन्द्रध्वज-पूजन, जाप्य-विधि, यागमंडल विधान पूजा, नांदिविधान, इन्द्र प्रतिष्ठा, क्रमशः पाँचों कल्याणकों की उत्सवमय उत्तम विधि की गई।

भगवान पार्श्वनाथ प्रभु विधिनायक थे, कमठ सहित उनके पूर्वभव के दृश्य विशाल चित्रों द्वारा तैयार कराये गये थे, रात्रि को यह दिखाते हुए नाथूलालजी ने सुंदर बोधयुक्त दृष्टांत-सिद्धांत बताकर हिंसा-अहिंसा और उनके फल का वर्णन करके अहिंसा की विजय बताई, क्षमा के उत्तम गुण बताये। कमठ संवर नामक व्यंतरदेव हुआ, उसके द्वारा मुनि भगवान प्रति उपसर्ग का दृश्य दिखाया गया।

'जांबुड़ी' जैन पाठशाला के बालकों के द्वारा अकलंक-निकलंक का ड्रामा तत्त्वचर्चा तथा धर्म की महिमा दर्शक सुंदर ढंग से किया गया था। तारीख १९-२-६६ रात्रि को श्री बाबूभाई के फतेपुर पाठशाला बालाओं द्वारा वारिषेण राजकुमार का ड्रामा अनेक तत्त्वचर्चा सहित दिखाया गया था। उनमें धर्म में उत्साह प्रेरक दृष्टांत तथा सिद्धांत दर्शक पात्रों का संवाद भी था। खास अतिथि में बम्बई से श्री नवनीतभाई जवेरी, श्री खेमचंदभाई, सेठ गोदीकाजी महेन्द्रकुमारजी सेठी थे, बालकों को इनाम दिये।

श्री बाबूलाल झांझरी (इंदौर), श्री मधुकरजी (मलकापुर) अजमेर से भजन मंडली डॉ. सौभागमलजी, आमंत्रण से उत्सव में भाग लेने पधारे थे, आपके कार्यक्रम हरेक अवसर पर उत्तम रहे।

भगवान के जन्म कल्याणक, तप कल्याणक के समय जुलूस में तथा वापिस लौटते समय सुंदर सजायी हुई ट्रक में भजन मंडली, श्री बाबूभाई तथा जयपुर निवासी गोदीकाजी, श्री महेन्द्रकुमार जी दाहोद के कन्हैयालालजी आदि ने बड़े उत्साहमय भक्ति भजन धुन चलाई। मंडप में पहुँचते नृत्य गान-भक्ति का दृश्य देखते ही बनता था।

तप कल्याणक उत्सव के समय छह भाई बहिनों ने आजीवन ब्रह्मचर्य पालन की प्रतिज्ञा ली, श्री स्वामीजी प्रतिज्ञा की विधि को गंभीर व धर्म प्रभावना उत्पादक ढंग से कर रहे थे, उसी समय फतेपुर पाठशाला की शिक्षिका कुमारी श्री ललिता बहिन ने भी स्वामीजी के सन्मुख आजीवन ब्रह्मचर्य प्रतिज्ञा धारण की। उत्तर गुजरात के सुप्रसिद्ध धर्मात्मा श्री छोटेलाल गुलाबचंद गांधी ने अपने आत्म विकास में वृद्धि हेतु स्वामीजी के समक्ष ब्रह्मचर्य की प्रतिज्ञा ली और स्वामीजी द्वारा महान उपकार मानकर उत्तम पवित्र कार्यों का परिचय दिया।

उत्सव में विशेषता

दो हाथी लाये गये थे, विशाल मंडप के दोनों कोने पर (१) भगवान नेमिनाथ की सुंदर बरात, राजुल का महल, वैराग्य प्रसंग, दीक्षा आदि की साकार रचना थी। इलेक्ट्रिक द्वारा सारी बरात घूमती रहती थी, हजारों दर्शकगण ठहर जाते थे। (२) भगवान महावीर का जीव दसभवपूर्व सिंह पर्याय में था, हिंसा कर रहा था, ऊपर से दो नग्न दिगम्बर मुनि आकर उसे हाथ की चेष्टा सहित उपदेश दे रहे हैं, सिंह को जातिस्मरणज्ञान और सम्यग्दर्शन हुआ। आँखों में से आँसू की धारा बह रही है, इलेक्ट्रिक द्वारा यह भी सजीव सा दृश्य, दर्शकों में बड़ा ही आकर्षण उत्पन्न कर रहा था।

११००० उपरांत तो आमंत्रित मेहमान थे, सबके लिये निवास स्थान, भोजनादि की व्यवस्था अलग-अलग थी, हेलीकॉप्टर विमान द्वारा पुष्पवर्षा, सुंदरतम विशालकाय अनेक जिन प्रतिमाजी, भगवान शांतिनाथ खडगासन भव्य बड़ी प्रतिमाजी, बिम्ब प्रतिष्ठा में बड़ी-बड़ी ८ प्रतिमा, दूसरी धातु तथा पाषाण की १६ प्रतिमाजी थी।

नि:संकोचतया दान की वर्षा करनेवालों की हमेशा सुंदर होड लगती थी, जिनमंदिर तथा उत्सव में जितने खर्च हुए, उनसे अधिक आय हुई।

अंतिम रथयात्रा का विराट जुलूस अभूतपूर्व था, अजमेर भजन मंडली तथा भक्तों का उत्साह, अतिशय अपार भीड़ और सभी समाज का प्रेममय उत्साह देखकर वि० सं० २०१७ के बम्बई पंच कल्याणक प्रतिष्ठा जिनेन्द्र रथयात्रा के दृश्य याद आते थे। जुलूस में से स्वामीजी ने गाँव के जिनमंदिर में जाकर भगवान के दर्शन किये।

भगवान की बड़ी-बड़ी प्रतिमाजी को जिनमंदिर वेदी में विराजमान करने का काम बड़ा भारी उत्साह गगनभेदी जयनाद १५-२० हजार जनसंख्या के बीच हो रहा था, उस समय तथा मंदिर के शिखर पर बड़ा भारी स्वर्ण कलश आरोहण तथा ध्वज आरोहण विधि करते समय जय-जयकार सहित विमान द्वारा पुष्पवर्षा का कार्यक्रम भी दो घंटा तक चलता रहा। स्थानीय शहर में जनसंख्या करीब २२००० है, आसपास के २५-३० गाँव-देहातों में से बहुत बड़ी संख्या में जनता इस मंगल महोत्सव देखने के लिये उमड़ पड़ी थी, सवेरे से लेकर शाम तक करीब एक लाख संख्या में दर्शकगण आये थे, जिनभगवंतों का दर्शन, स्वामीजी का आध्यात्मिक प्रवचन सुनकर बहुत आनंद प्रगट करते थे।

रात्रि के समय तथा कभी दोपहर को पंडित श्री नाथुलालजी शास्त्री, पंडित श्री फूलचन्दजी सिद्धांत शास्त्री, पंडित श्री बंसीधरजी न्यायालंकार के प्रवचन होते थे। श्री कानजीस्वामी तथा पंडितजी के प्रवचनों में सर्वज्ञ वीतराग कथित और मात्र आत्महित में हेतु जैन तत्त्वज्ञान, वीतराग विज्ञान का युक्तिपूर्ण वर्णन था, जिनेन्द्र की महिमा, भक्ति दर्शक खास प्रवचन तो हमेशा स्वामीजी करते ही थे।

उत्सव के अंतिम दिन पंडित प्रवर श्री बंशीधरजी न्यायालंकार ने युक्तिपूर्ण न्याय सहित श्री कानजीस्वामी द्वारा सच्चे निश्चय-व्यवहार का निरूपण हो रहा है, वह अपने घर की बात नहीं है, किंतु सर्वज्ञ वीतराग ने जो हित का उपाय किया, और कहा, वही बात दिगम्बर जैनाचार्यों के कथनानुसार ही श्री कानजीस्वामी कह रहे हैं। जो बात श्री जिन की है, वही बात अनुभवी ज्ञानी श्री कानजीस्वामी की है। इस काल में स्वामीजी द्वारा कल्याणकारी जैनधर्म का प्रभाव बढ़ रहा है इत्यादि कथन कहकर उपकार माना, और यह भी कहा कि-निंदा करनेवालों के पास जो है सो देता है उसे कौन ग्रहण करे? श्री कानजीस्वामी शातायु हों, मैं हृदय से भगवान के सामने भावना करता हूँ।

श्री पंडित फूलचन्दजी ने भी स्वामीजी का सत्यार्थ परिचय देकर आपके कथन सर्वज्ञ के आगमानुकूल और नयविभाग से ही हैं, उनमें विरोध दिखाना व्यर्थ है। फिर श्री बाबूभाई के

विषय में अपना परिचय देते हुए कहा कि मैं हृदय से कहता हूँ कि बाबुभाई धर्मरत्न हैं। मैं ऐसा समझता था कि बाबूभाई उपदेश-दान-पूजा-भक्ति द्वारा धर्म प्रचार करते हैं किंतु आपकी असाधारण शक्ति और पंच कल्याणक की उत्तम व्यवस्था देखकर मैं निश्चय से कहता हूँ कि—बाबूभाई सच्चे धर्मरत्न हैं, ऐसे योग्य व्यक्ति का धर्मानुरागवश परिचय दिये बिना नहीं रह सकता, ऐसा कहकर बहुत प्रमोद व्यक्त किया।

इस महान उत्सव में सभी सहयोग दाताओं को धन्यवाद, उपरांत फतेपुर, रणासण आदि २५-३० गाँवों के सब साधर्मियों को इस महान महोत्सव को सफल बनाने में सहयोग के लिये धन्यवाद है। *दर्शक—ब्रह्मचारी गुलाबचंद जैन*

एक अति वैराग्यमय घटना

रविवार तारीख १९-२-६७ को इंदौर आदि से आये हुए मेहमान ८ मील दूर ईडर पहाड़ पर प्राचीन जिन प्रतिमाजी के दर्शनार्थ मोटर द्वारा गये थे, शीघ्रता से वापिस आते वक्त रास्ते में ट्रक के साथ जोर से टकराने से अकस्मात् बड़ी दुर्घटना हो गई। जिसमें इंदौर निवासी श्री रतनलालजी सेठी तथा श्री रूपचंदजी सेठी (उम्र ५६-६५) दोनों का देहावसान हो गया तथा श्री सौभाग्यमलजी भोपाल, श्री पद्मचन्द्रजी आगरा को भी चोट लगी, उनकी तबीयत ठीक हो रही है।

जिस समय मोटर दुर्घटना के समाचार मिले, उस दिन उत्सव को मंद कर दिया, पूज्य स्वामीजी ने १० मिनिट अनित्य भावना के विषय पर वर्णन और शोक मनाकर प्रवचन बंद रखा, पश्चात् सभा में श्री बाबूभाई ने १० मिनिट वैराग्यभावना द्वारा शोक प्रदर्शित किया। स्वर्गस्थ दोनों आत्मा के सम्मान में नव बार नमस्कार मंत्र का जाप किया गया। दोपहर को खुद पूज्य श्री कानजीस्वामी हिम्मतनगर सिविल हास्पीटल में पहुँचकर घायल साधर्मी को धर्मप्रेम से भरपूर वैराग्य, भेदज्ञान तथा समता के दो वचन सुनाये। हमारे पवित्र साधर्मी स्व० आत्मा श्री रतनलालजी तथा श्री रूपचन्दजी को तत्त्वज्ञान की रुचि, अभ्यास, धर्ममय संस्कार और समाज में भी उनकी बड़ी प्रतिष्ठा थी। भगवान से प्रार्थना है, उनकी आत्मा शीघ्र साक्षात् मोक्षमार्गी बने, परमेष्ठी पद में प्रवेश करे। हम सब आपके परिवार, सगे संबंधीजनों के दु:ख में भाग लेकर संवेदना प्रगट करते हैं। —ब्रह्मचारी गुलाबचंद जैन

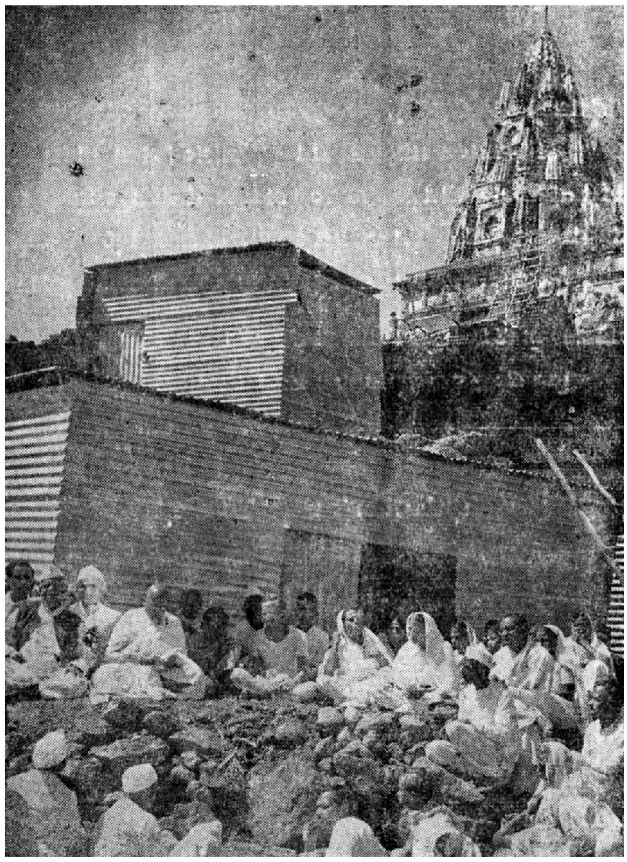

सम्मेदशिखरजी की सबसे उत्तंग टोंक; एवं भक्ति का प्रसंग

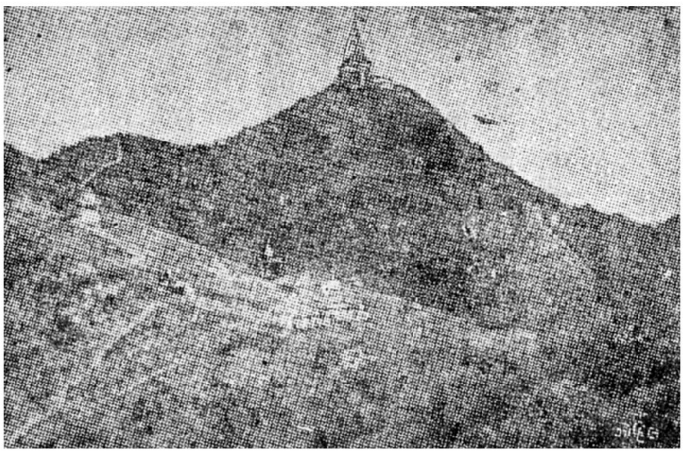

तीर्थराज श्री सम्मेदशिखरजी

वि०सं० २०१३ की यात्रा के समय श्री पार्श्वनाथ टोंक (सुवर्ण भद्रकूट) के ऊपर जिनेन्द्र भक्ति का एक दृश्य

"सिद्ध भूमि के सिद्धिधाम देखीयाजी रे, आज प्रत्यक्ष निहाल्या यह धाम... आज०। धन्य भूमि अहो, धन्य धूलि को रे... पुनीत पद से पवित्र अति होय... आज०। अहो अपूर्व यात्रा आज हो रही रे... अम अंतर में आनंद उभराय... आज०। अपूर्व भाव से नमो तीर्थराज को जी, रे..."

धर्म प्रभावना के समाचार

भावनगर सौराष्ट्र—तारीख २२-२-६७ से तारीख २५ यहाँ जैनधर्म की विशेष प्रभावना हुई। पूज्य स्वामीजी का अभूतपूर्व बड़ा स्वागत समारोह, विशाल जुलूस के रूप में शहर में चलकर सभा मंडप में मांगलिक प्रवचन, यहाँ रत्नत्रय विधान, पूजा-मंडल विधान भी रखा गया था, चार दिन तक दोनों समय समयसारजी शास्त्र पर प्रवचन तथा रात्रि को शंका समाधान का कार्यक्रम था। बाहर गाँव से बहुत संख्या में मेहमान आये थे, शहर के अग्रणीजन भी बड़ी संख्या में परम जिज्ञासा से हमेशा स्वामीजी का प्रवचन सुनने के लिये ठीक समय पर उपस्थित रहते थे। सेठ श्री ब्रजलालजी, श्री मफतलालजती सुतरी तथा मुमुक्षु मंडल को इस उत्तम धार्मिक आयोजन के लिये धन्यवाद। वहाँ से अहमदाबाद, हिम्मतनगर, आबू, पाली, सोजत में होकर—

मदनगंज (किशनगढ़)—तारीख १-३-६७ दिगम्बर जैन समाज तथा लादुलालजी पहाडया द्वारा स्वामीजी का बड़ा भारी स्वागत हुआ। स्वागत में जयपुर तथा अजमेर, उदयपुर आदि से खास मेहमान भी पधारे थे, प्रवचन में बड़ी भारी भीड़ होने पर अभूतपूर्व शांति से सब सुनते थे, अजमेर से डॉ. सौभाग्यमलजी आदि भी आये थे। प्रवचन के बाद श्री दिगम्बर जैन वीर संगीत मंडल द्वारा भक्ति का कार्यक्रम था, तथा के० डी० हाई स्कूल द्वारा दोपहर तथा रात्रि को कार्यक्रम था। धार्मिक ड्रामा और जैन हाईस्कूल की विकासमय प्रवृत्ति देखकर दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट सोनगढ़ के द्वारा ४०१) भेंट दिया गया।

कुचामन—तारीख २-३-६७ यहाँ हाथी सहित जिनेन्द्र भगवान की विशाल रथयात्रा और साथ में स्वामीजी का स्वागत जुलूस भी था, अजमेर से भजन मंडली का कार्यक्रम बहुत उत्तम रहा तथा वीर सेवा भजन मंडली द्वारा स्वागत में बड़ा भारी भक्तिमय कार्यक्रम था। दोपहर को स्वामीजी का प्रवचन सुननेवालों की इतनी बड़ी भारी संख्या थी कि तीन हजार संख्या पंडाल में और हजारों की संख्या रास्ते पर खड़ी-खड़ी बड़े प्रेम से श्री कानजीस्वामी का प्रवचन सुनती थी। कुचामन निवासी कहते थे कि धार्मिक प्रवचन में आज तक इतने श्रोता की संख्या कभी नहीं हुई थी। श्री हीरालालजी काला, श्री अजितप्रसादजी काला तथा श्री राजमलजी छाबड़ा ने अनेक साधर्मी बंधुओं के सहयोग से यह सफल आयोजन किया। अत: सभी को धन्यवाद।

लाडनू—तारीख ३ से ४ दिन यहाँ स्वामीजी का प्रवचन हुआ। समाज ने अच्छी तरह लाभ लिया। सेठ बच्छराजजी गंगवाल जिन्होंने सोनगढ़ में ब्रह्मचारिणी बहिनों के लिये बड़ा

आश्रम बनाया है, उन्हीं के खास अनुरोध से पूज्य स्वामीजी पधारे थे और श्री शिखरजी यात्रा निमित्त जानेवाले बहुत भाई-बहिन यहाँ आ पहुँचे थे। —ब्रह्मचारी गुलाबचंद जैन

आत्मधर्म के ग्राहकों से निवेदन

आत्मधर्म मासिक पत्र द्वारा सर्वज्ञ वीतराग कथित दिगम्बर जैनाचार्यों द्वारा जो निर्मल तत्त्वज्ञान प्रगट हो चुके हैं, उनकी परंपरा से ही यह प्रचार होता है। नयी बात नहीं है। स्वाश्रय से ही पवित्र मोक्षमार्ग और उसका फल तथा उससे विपरीतता में बंध मार्ग और उसका फल संसार होता है, इस महान सिद्धांत को समझ ले तो स्वसन्मुखता और सच्चा भेदविज्ञान होता है। आत्मधर्म के ग्राहकों की संख्या २५०० उपरान्त हो चुकी है। आगामी चैत्र मास में वार्षिक शुल्क (चंदा) पूर्ण हो जाता है। और वैशाख मास से नया वर्ष शुरु होता है, उसे याद करके शीघ्रता से मनिआर्डर द्वारा या हरेक गाँव में जितनी संख्या में ग्राहक हों, एक साल के तीन रुपये के हिसाब से एकत्र करके प्रथम से ही रुपया भेज दीजियेगा। वी.पी. करने में व्यर्थ ८५ पैसे खर्च और अनेक कठिनाई रहती है। चंदा भेजते समय आपके चालू ग्राहक नंबर और पता स्पष्ट लिखियेगा। जो भाई बहुत पीछे से चंदा भेजते हैं, और दो मास बाद ग्राहक बनते हैं। उन्हें अंक की कमी पड़ जाने से पूर्व के अंक नहीं भेज सकते हैं। अत: सर्वज्ञ वीतराग कथित पवित्र ज्ञानयज्ञ में सहयोग देकर अपने परिचितों को ग्राहक बनाकर ग्राहक संख्या बढ़ाने की प्रार्थना है। अब की बार आत्मधर्म का वार्षिक चंदा-तीन रुपया वार्षिक रखा है।

जैन दर्शन शिक्षण शिविर का उत्तम आयोजन

राजकोट—इस साल वैशाख मास का शिक्षण शिविर, युवक वर्ग, छात्रों के लिये तथा धर्म जिज्ञासु जैन बंधुओं के लिये वैशाख सुदी ३ से २० दिन तक रखा गया है। उनके भोजनादि व्यवस्था के खर्च श्री दिगम्बर जैन समाज द्वारा होगा। परमोपकारी पूज्य कानजीस्वामी उस अवसर पर राजकोट में रहकर सर्वज्ञ वीतराग कथित तत्त्वज्ञानमय आध्यात्मिक उपदेश तथा शंका समाधान, तत्त्वचर्चा का लाभ देंगे। लाभ लेने के इच्छुक प्रथम से पत्र द्वारा उस समय पर आने की सूचना अवश्य भेजें, योग्य साधर्मी को आने का आमंत्रण दे सकते हैं, राजकोट बहुत बड़ा शहर है। तत्त्वज्ञान में समझदार जिज्ञासु समाज बड़ी संख्या में रहते हैं, इसलिये श्रोता-वक्ता द्वारा धर्म प्रभावना का रंग और सूक्ष्मतर तत्त्वचर्चा देखते ही बनती है।

पत्र व्यवहार का पता—श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट
पो० राजकोट (सौराष्ट्र) ठि० पंचनाथ प्लोट-५

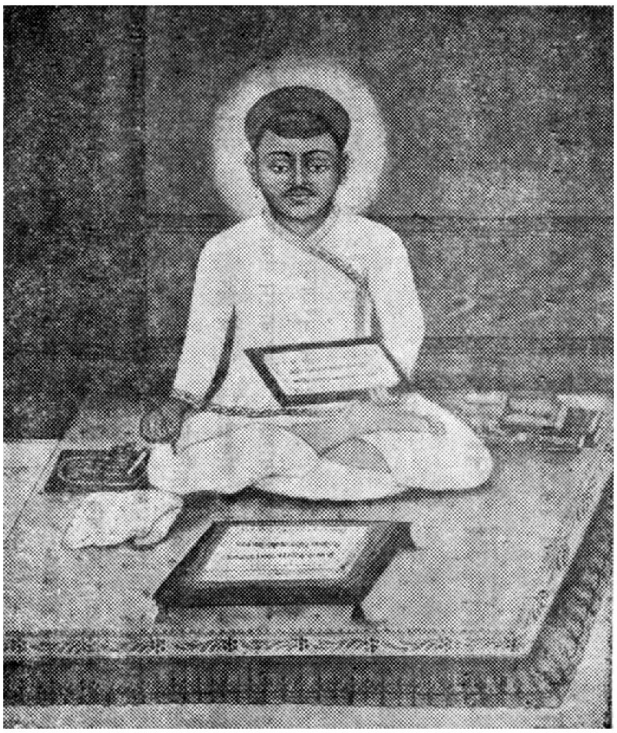

आचार्यकल्प पंडित श्री टोडरमलजी

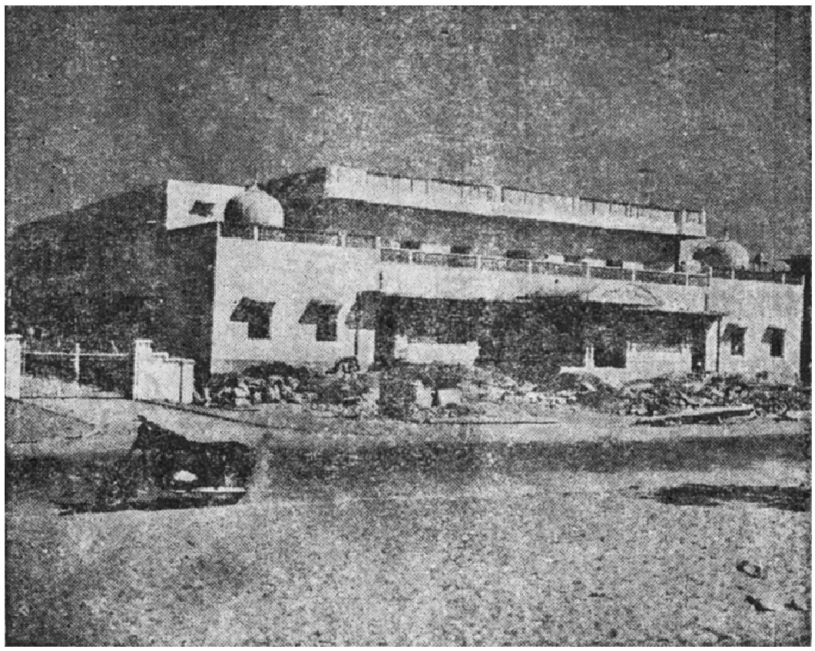

नवनिर्मित श्री टोडरमल
स्मारक भवन

पंडित श्री टोडरमल स्मारक हॉल का उद्घाटन, जिनमंदिर में वेदी प्रतिष्ठा, पंडितजी का द्विशताब्दि समारोह आदि महोत्सव निमित्त

पूज्य श्री कानजीस्वामी का जयपुर में पदार्पण

जयपुर—तारीख ६-३-६७ श्री पंडितजी के वंशज सुयोग्य आत्मार्थी श्री पूरणचंदजी गोदीका द्वारा पवित्र धर्म प्रभावना का उत्तम उत्साह सहित, ऐतिहासिक और बड़ा भारी अनेकविध विशाल आयोजन हुआ (जिनका वर्णन करें तो ग्रंथ बन जाये) संक्षेप में—पूज्य स्वामीजी का स्वागत, मंगल प्रवचन, दोपहर को श्री टोडरमल कीर्ति मंडप में प्रवचन रखे गये थे। सभा स्थान १६००० संख्या सुन सके ऐसा विशाल था किंतु शहर में कर्फ्यू होने से ८ दिन तो नगर निवासी बड़ी संख्या में आकर पूर्णतया लाभ न ले सके। बम्बई, गुजरात, मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश से दो हजार मेहमान आये थे, समझदार विद्वानों की संख्या अच्छी थी, सर्वत्र सुंदर तत्त्वचर्चा का वातावरण था जो कि देखते ही बनता था।

तारीख ७-८ पूज्य स्वामीजी द्वारा ऋषभजिनस्तोत्र (पद्मनंदी) तथा समयसारजी शास्त्र पर प्रवचन हुये थे। रात्रि को पंच कल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव फिल्म, अजमेर भजनमंडली तथा दाहोद निवासी भाईयों द्वारा भजन के कार्यक्रम तथा श्री खेमचंदभाई, श्री बाबूभाई, श्री पंडित गेंदालाजी शास्त्री, श्री पंडित नाथूलालजी शास्त्री, पंडित श्री बंशीधरजी के द्वारा प्रवचन।

तारीख १० मार्च—महावीर जैन हाईस्कूल में श्री पूरणचंदजी गोदीका द्वारा बड़े हॉल का उद्घाटन तथा स्वामीजी का प्रवचन, स्कूल को मदद रूप में अच्छी रकम का चंद हुआ।

तारीख ११ मार्च टोडरमल स्मारक हॉल जिनमंदिर में, इन्द्रध्वज, पूजन विधान, शांतिमंत्र जाप्य प्रारंभ, इन्द्र प्रतिष्ठा, नांदी विधान, मंडल विधान पूजा, रात्रि को कीर्ति मंडप में विद्वानों द्वारा प्रवचन।

तारीख १२ दोपहर में आदर्शनगर मुलतानी दिगम्बर जैन मंदिर में प्रवचन रखा गया था। रात्रि को श्री टोडरमलजी कीर्ति मंडप में मदनगंज-किशनगढ़ के सुप्रसिद्ध श्री दिगम्बर जैन वीर संगीत मंडल के युवक सदस्यों द्वारा 'श्री सीताजी की अग्नि परीक्षा' नामक धार्मिक अभिनय आकर्षक साज सामानों के साथ सुंदर ढंग से दिखाया गया। ४ घंटे में पूर्ण हुआ था जो सभी को अत्यधिक पसंद आया। अभिनय का उद्घाटन श्री पंडित हिम्मतलालजी जेठालालजी शाह एम.एस.सी. के कर कमलों द्वारा हुआ था।

मंडल को अभिनय में होनेवाले व्यय के अलावा श्री पूरणचंदजी सा० गोदीका द्वारा १००१) रुपया तथा श्री मीठालालजी महेन्द्रकुमारजी सेठी जयपुर द्वारा १०१), श्री सेठ भगवानदासजी शोभालालजी सागर द्वारा १०१) तथा श्री सेठ पोपटलालजी बोहर, फर्म-नेशनल टाइल्स एंड इंडस्ट्रीज प्रा० लि० बम्बई द्वारा १०१), श्री ला० कैलाशचन्द्रजी जैन, राजा टायेज दिल्ली द्वारा १०१) रुपया प्रदान किये गये। इस मंडल के सभी जैन युवकगण अच्छे संपन्न घराने के हैं, प्रदर्शन द्वारा जो आय होती है, उसे मदनगंज में जैन विश्रांति भवन बन रहा है, उसमें लगाते हैं।

तारीख १३ मार्च शहर में दीवानजी के बड़े मंदिरजी में श्री कानजीस्वामी की उपस्थिति में मंदिरजी में सुवर्ण कलशों तथा ध्वजादण्ड आरोहण विधि की गई, जो बीच में कई वर्षों से नहीं हो पाई थी। मंदिरजी में जहाँ श्री टोडरमलजी के नित्य प्रवचन होते थे, वह स्थान बताया, तथा श्री पंडित टोडरमलजी, पंडित जयचंदजी, पंडित सदासुखदासजी आदि विद्वानों की हस्तलिखित प्रतियाँ, सुनहरी स्याही से लिखित तथा चित्रोंवाले शास्त्रों की प्रदर्शनी दिखाई गई। दर्शकों की बहुत भीड़ रही। वहाँ व्यवस्थापक श्री तथा डॉ. कस्तूरचन्दजी काशलीवाल, श्री भंवरलालजी शाह आदि यह समझाते थे। पंडित जगन्मोहनलालजी शास्त्री, श्री पंडित कैलाशचंदजी शास्त्री, पंडित फूलचन्दजी शास्त्री, पंडित बंशीधरजी न्यायालंकार, पंडित प्रकाशचंदजी 'हितैषी', पंडित परमानंदजी शास्त्री आदि अनेक विद्वानगण ने उसमें अच्छी तरह भाग लिया, चर्चा-वार्ता चलती थी। स्वामीजी का प्रवचन यहाँ हुआ, श्रोताओं की सबसे ज्यादा संख्या रही। पश्चात् सवेरे ९ बजे से बापूनगर में श्री टोडरमल स्मारक भवन में पहुँचे। इस विशाल हॉल का उद्घाटन पूज्य श्री कानजीस्वामी के शुभहस्त से हुआ। जिनमंदिर में वेदी में भगवान सीमंधर भगवान की प्रतिष्ठा, शिखर पर कलश-ध्वजारोहण, स्मारक हॉल ऊपर ध्वजारोहण विधि, जिनमंदिर में श्री समयसारजी शास्त्र जिनवाणी की स्थापना आदि सब विधि प्रतिष्ठाचार्य पंडित श्री नाथूलालजी शास्त्री ने कराई। पूज्य कानजीस्वामी सब विधि में उपस्थित थे। श्री पूरणचंदजी गोदीका, उनके परिवार तथा श्री महेन्द्रकुमारजी सेठी, श्री नेमीचंदजी पाटनी, श्री कोमलचंदजी आदि तथा सभी कार्यवाहकों को धन्यवाद। आज श्री गोदीकाजी का शहर में स्थित चैत्यालय में जिनप्रतिमाजी विराजमान किये गये। तारीख १३ रात्रि को पंडित टोडरमलजी द्विशताब्दि

महोत्सव मनाया, उद्घाटन श्रीमान शेठ साहू शांतिप्रसादजी जैन द्वारा करवाया गया। तथा इस मंगल कार्य में श्री नवनीतभाई सी. जवेरी (प्रमुख श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर सोनगढ़) को अध्यक्ष बनाया गया। आपका परिचय श्री महेन्द्रकुमारजी सेठी ने कराया।

पूज्य स्वामीजी ने पंडित कैलाशचंदजी सिद्धांत शास्त्री को मंगलाचरण पढ़ने को कहा, मंगल उच्चारण पश्चात् अध्यक्ष श्री नवनीतभाई का प्रवचन और टोडरमल स्मारक ग्रंथमाला द्वारा प्रकाशित पुष्प नं० १ से ६ का तथा अन्य ग्रंथों का उद्घाटन श्री पूरणचंदजी द्वारा कराया गया, श्री गोदीकाजी द्वारा विद्वानों को ग्रंथ समर्पण, (१) मोक्षमार्गप्रकाशक, (२-३) जयपुर (खानिया) तत्त्वचर्चा भाग १-२, (४) अध्यात्मसंदेश (रहस्यपूर्ण चिट्ठी-प्रवचन), (५) मोक्षमार्ग प्रगट करने का उपाय तत्त्वनिर्णय, (६) शास्त्रों के अर्थ करने की पद्धति उपरांत—श्री टोडरमल जयंती स्मारिका, पद्मनंदी पंचविंशतिका में से 'ऋषभजिनस्तोत्र', पंडित टोडरमलजी परिचय। ग्रंथ उद्घाटन के पश्चात् पूज्य स्वामीजी ने टोडरमलजीकृत मंगलाचरण—

मंगलमय मंगल करण वीतराग विज्ञान
नमो तेह जातैं भये, अरहंतादि महान॥

पढ़कर सुंदर अर्थ समझाये। पश्चात् जयपुर (खानिया) तत्त्वचर्चा पुस्तक का महत्त्व और उनका पूर्व इतिहास और प्रयोजन सुनाया। श्री नेमीचंदजी पाटनी ने सोनगढ़ निवासी माननीय पंडित श्री हिम्मतलाल जे० शाह का परिचय कराया। राजुल नामक बालिका जिसे कि पूर्व भव की स्पष्ट स्मृति है, उसका परिचय कराया। बाद में पंडित श्री हिम्मतलालभाई ने टोडरमलजी तथा उनकी महान कृति का महिमा युक्त परिचय कराया, पश्चात् श्रीमंत सेठ साहू शांतिप्रसादजी ने श्री टोडरमलजी तथा पूज्य स्वामीजी द्वारा समाज को बहुत उपकार बताकर निश्चयनय द्वारा सच्चा समाधान और शांति मिलती है, ऐसा कहकर जैनाचार्यों की परंपरा और समाज हित की भावना प्रगट की। पश्चात् पंडित जगन्मोहनलालजी शास्त्री ने, पूज्य टोडरमलजी प्रति परम श्रद्धा; जैन सिद्धांतों की रक्षा का कर्तव्य और पूरणचंद्रजी गोदीकाजी के प्रति धर्मवात्सल्य, स्वामीजी द्वारा पंडित टोडरमलजी अनुसार महान धर्मकार्य और उपकारक का वर्णन-पश्चात् पंडित श्री कैलाशचंदजी, पंडित श्री फूलचंदजी, पंडित श्री बंसीधरजी न्याय अलंकार और पंडित श्री चैनसुखदासजी, श्री खेमचंदभाई जे. शेठ ने अपनी-अपनी शैली से

सुंदर वक्तव्य दिये। श्री बाबूलाल चुन्नीलाल महेता ने पंडित टोडरमलजी द्वारा महान उपकार और घोर उपसर्ग विजेता, जैनधर्म के अनमोल बलिदान वीररूप में अनेक प्रकार उनकी स्मृति गाकर सर्वज्ञ वीतराग कथित तत्त्वज्ञानमय स्मारक जीवंत बनाने के लिये ध्रुवफण्ड की बात कहते ही हजारों-सैंकड़ों की रकम दान में आने लगी, करीब एक लाख का चंदा ध्रुवफण्ड में हो गया।

पंडितजी चैनसुखदासजी, वयोवृद्ध होने पर आज भी अदम्य उत्साही हैं। आपने टोडरमलजी के वंशज गोदीकाजी पूरणचंदजी का परिचय देकर उनकी महान आदर्शता बतलाई, स्मारकहॉल तथा जैन साहित्य का प्रकाश-विकास और शोधकार्य पर भार दिया, श्री पंडित गेंदालालजी शास्त्री बूँदी, श्री पंडित प्रकाशचंदजी 'हितैषी', श्री पंडित परमानंदजी शास्त्री देहली, पंडित भंवरलालजी न्यायतीर्थ आदि जयपुर के विद्वान तथा १०५ क्षुल्लकजी पूर्णसागरजी आदि त्यागीगण पधारे थे।

तारीख १४-१५-१६ तक विद्वानों के प्रवचन द्वारा टोडरमलजी द्विशताब्दि जयन्ती मनायी गई।

तारीख १४ मार्च—रात्रि को जिनेन्द्रभक्ति उपरांत हिम्मतनगर जिनेन्द्र पंच कल्याणक फिल्म प्रदर्शनी भी दिखाई गई।

टोडरमलजी स्मारक भवन बहुत बड़ा विशाल बना है, उनका तथा इस महामहोत्सव के आयोजन तथा व्यवस्था के सब खर्च श्री सेठ पूरणचंदजी गोदीका परिवार की ओर से लगा है। इस महोत्सव की तैयारी १२ मास से हो रही थी, उनमें मुख्य-मुख्य सहयोगदाता, कार्यकर्तागण सबके नाम लिखा जाना संभव नहीं, सभी को बहुत-बहुत धन्यवाद।

जयपुर में इस टोडरमल स्मारक ग्रंथमाला पुस्तक प्रकाशन आदि की जानकारी के लिये पत्र व्यवहार करना हो तो पता—श्री भंवरलालजी शाह ठि० चित्तरंजन मार्ग-सी-स्कीम, शान्ति निवास पोस्ट जयपुर (राजस्थान) पर करें। (शेष समाचार आगमी अंक में)

—ब्रह्मचारी गुलाबचंद जैन

नोट—यहाँ से तारीख १७-३-६७ को पूज्य कानजीस्वामी यात्री संघ सहित जयपुर से श्री महावीरजी होकर शिखरजी तीर्थक्षेत्र की वंदनार्थ प्रस्थान करेंगे।

मोक्षमार्गप्रकाशक (आधुनिक हिन्दी भाषा में)

आचार्यकल्प श्री पंडित प्रवर टोडरमलजी कृत यह उत्तम रचना है। मूल स्वहस्त लिखित प्रति द्वारा अक्षरश: अनुवाद कराके, मिलान कराके, बड़े भारी श्रमपूर्वक और अपूर्व उत्साह द्वारा यह प्रकाशन छप चुका है और पंडित जी कृत रहस्यपूर्ण चिट्ठी तथा कविवर पंडित बनारसीदासजी कृत परमार्थ वचनिका; निमित्त-उपादान चिट्ठी यह तीन अधिकार भी मूल प्रतियाँ प्राप्त करके प्रकाशन में लगा दी हैं। प्रथम से ही इनके १०५०० संख्या के ग्राहक हो चुके हें। वे सब साधर्मीजन तीव्र जिज्ञासा सहित भारी तकादा कर रहे हैं, अब उन्हें आर्डर के माफिक प्रतियाँ शीघ्र ही भेजी जा रही हैं। लागत मूल्य ४.५० हुआ है किंतु इसका उत्तम ज्ञान प्रचार हेतु मात्र २) मूल्य रखा गया है। जिन्हें पुस्तक चाहिये, वे शीघ्रता से नये आर्डर बुक करा देवें।

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

श्री समयसार कलश टीका

श्री राजमलजी पांडे कृत प्राचीन हस्त लिखित प्रतियों से बराबर मिलान करके आधुनिक राष्ट्रभाषा में, सुंदर ढंग से, बड़े टाइप में उत्तम प्रकाशन:—

आत्महित का जिसको प्रयोजन हो उनके लिये गूढ़ तत्त्वज्ञान के मर्म को अत्यंत स्पष्टतया खोलकर स्वानुभूतिमय उपाय को बतानेवाला यह ग्रंथ अत्यन्त रोचक उपरांत अनुपम ज्ञाननिधि है। पंडित राजमलजी ने (विक्रम सं० १६१५) पूर्वाचार्यों के कथनानुसार आध्यात्मिक पवित्र विद्या के चमत्कारमय यह टीका बनाई है। लागत मूल्य ५) होने पर घटाया हुआ मूल्य २.७५ है। पोस्टेज - १.४५

पता —श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

परमपूज्य श्री कानजी स्वामी के आध्यात्मिक वचनों का अपूर्व
लाभ लेने के लिये निम्नोक्त पुस्तकों का—

अवश्य स्वाध्याय करें

श्री समयसार शास्त्र	५–०
श्री प्रवचनसार शास्त्र	४–०
श्री नियमसार शास्त्र	४–०
श्री पंचास्तिकाय संग्रह शास्त्र	३–५०
समयसार प्रवचन, भाग १–२–३	अप्राप्य
समयसार प्रवचन भाग ४	४–०
[कर्ताकर्म अधिकार, पृष्ठ ५६३]	
आत्मप्रसिद्धि	४–०
मोक्षशास्त्र बड़ी टीका (तृ०), पृष्ठ–९००	५–०
स्वयंभू स्तोत्र	०–५०
मुक्ति का मार्ग	०–५०
मोक्षमार्ग–प्रकाशक की किरणें प्र०	१–०
'' ''द्वितीय भाग	२–०
जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तरमाला, भाग १–२–३	०–६०
योगसार–निमित्त उपादान दोहा, बड़ा टा.	०–१२
श्री अनुभवप्रकाश (दीपचंद्रजी कृत)	०–३५
श्री पंचमेरु पूजा संग्रह आदि	१–०
बृ.दसलक्षण धर्मव्रत उद्यापन पूजा	०–७५
देशव्रत उद्योतन प्रवचन	६–०
अष्टप्रवचन (ज्ञानसमुच्चयसार)	१–५०
मोक्षमार्गप्रकाशक (श्री टोडरमलजी कृत) आधुनिक भाषा में	प्रेस में
समयसार कलश टीका (पं. राजमल्लजी पांडे कृत) आधुनिक भाषा में	प्रेस में

[डाकव्यय अतिरिक्त]

जैन बाल पोथी	०–२५
छहढाला बड़ा टाईप (मूल)	०–१५
छहढाला (नई सुबोध टी.ब.) सचित्र	१–०
ज्ञानस्वभाव ज्ञेयस्वभाव	प्रेस में
सम्यग्दर्शन (तीसरी आवृत्ति)	१–८५
जैन तीर्थयात्रा पाठ संग्रह	१–४५
अपूर्व अवसर अमर काव्य पर प्रवचन प्रवचन और श्री कुंदकुंदाचार्य द्वादशानुप्रेक्षा व लघु सामा. प्रेस में	
भेदविज्ञानसार	२–०
अध्यात्मपाठ संग्रह	४–०
वैराग्य पाठ संग्रह	१–०
निमित्तनैमित्तिक संबंध क्या है ?	०–१५
स्तोत्रत्रयी	०–५०
लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका	०–२५
'आत्मधर्म मासिक' इस एक वर्ष के लिये	२–०
'' पुरानी फाईलें सजिल्द	३–७५
शासन प्रभाव तथा स्वामीजी की जीवनी	०–१२
जैनतत्त्व मीमांसा	१–०
बृ०मंगल तीर्थयात्रा सचित्र गुजराती में ग्रन्थ का मात्र	१८) ६–०
अभिनंदन ग्रंथ	७–०

मिलने का पता—
श्री दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

मुद्रक—नेमीचन्द बाकलीवाल, कमल प्रिन्टर्स, मदनगंज (किशनगढ़)
प्रकाशक—श्री दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट के लिये—नेमीचन्द बाकलीवाल।